सत्ताईस माससे अगाड़ी सगाईतक एक दिनसे शुद्धि है. इसके अगाड़ी बड़ी हुई कन्याका माता–पिताको तीन रात्रिका आशौच है ऐसा निश्चय है ॥१५॥ वाग्दान अर्थात् सगाई करे पीछे पिता और वर दोनोंको तीन दिवसका आशौच है और विवाह करे पीछे पतिकोही आशौच रहता है. पिताके नहीं ॥ १६ ॥ जो छह मासके अंदर गर्भस्राव हो तो मासकी बराबर दिनोंसे उसकी माताको सूतक रहता है ॥१७॥ इसके अगाडी छः मासके पीछे गर्भस्रावसे अपनी जातिमें कहा सूतक माताके होता है और

ततोवाग्दानपर्यंतंयावदेकाहमेवहि ॥ अतःपरंप्रवृद्धानांत्रिरात्रमितिनिश्चयः ॥ १५ ॥ वाक्प्रदानेकृतेत्वत्रज्ञेयंचोभयतस्त्र्यहम् ॥ पितुर्वरस्यचततोदत्तानांभर्तुरेवहि ॥ १६ ॥ षण्मासाभ्यंतरेयावद्गर्भस्रावोभवेद्यदि ॥ तदामाससमैस्तासांदिवसैःशुद्धिरिष्यते ॥ १७ ॥ अतऊर्ध्वंस्वजात्युक्तमाशौचंतासुविद्यते ॥ सद्यःशौचंसपिंडानांगर्भस्यपतनेसति ॥ १८ ॥ सर्वेषामेववर्णानांसूतकेमृतकेऽपिवा ॥ दशाहाच्छुद्धिरित्येषःकलौशास्त्रस्यनिश्चयः ॥ १९ ॥ आशीर्वादंदेवपूजांप्रत्युत्थानाभिवंदनम् ॥ पर्यंकेशयनंस्पर्शंनकुर्यान्मृतसूतके ॥ २० ॥ संध्यादानंजपंहोमंस्वाध्यायंपितृतर्पणम् ॥ ब्रह्मभोज्यंव्रतंनैवकर्तव्यंमृतसूतके ॥ २१ ॥ नित्यंनैमित्तिकंकाम्यंसूतकेयः समाचरेत् ॥ तस्यपूर्वकृतंनित्याद्रिकंकर्मविनश्यति ॥ २२ ॥

सपिंडोंके गर्भस्रावमें स्नानमात्रसे शुद्धि होती है ॥ १८ ॥ सब वर्णोंको जन्मसूतक और मृतकसूतकमें दश दिनसे शुद्धि है. कलियुगमें यह शास्त्रका निश्चय है ॥ १९ ॥ आशीर्वाद, देवपूजा, प्रत्युत्थान, नमस्कार, शय्यापर सोना, स्पर्श ये मृतकसूतकमें नहीं करना ॥ २० ॥ संध्या, दान, जप, होम, वेदपठन, पितृतर्पण, ब्राह्मणभोजन, और व्रत येभी मृतकसूतकमें नहीं करना ॥ २१ ॥ नित्यनैमित्तिक और काम्यकर्म जो सूतकमें आचरण करता है उसका पूर्वकृत नित्यादिक कर्म नाश होता है ॥ २२ ॥

चांद्रायणादि महाव्रतयुक्त, ब्रह्मचारी, महामंत्रोंसे पवित्र, अग्निहोत्री, ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मण, संन्यासी, राजा इन्होंको सूतक नहीं है ॥ २३ ॥ विवाह, उत्सव, यज्ञ इन्होंमें मृतसूतक हुवा तो उसका पूर्वकृत अन्न भोजन करना यह मनुप्रमाण कहा है ॥ २४ ॥ सूतकमें जो अजान दान लेता है उसको दोष नहीं है. याचकको देनेसे देनेवाला दोषको प्राप्त होता है ॥ २५ ॥ जो सूतकको गुप्त रखकर, ब्राह्मणको अन्न देता है, सूतक जानकरभी जो ब्राह्मण लेता है वे दोनों दोषभागी हैं ॥ २६ ॥ तिसीसे सूतककी शुद्धिके

व्रतिनोमंत्रपूतस्यसाग्निकस्यद्विजस्यच ॥ ब्रह्मनिष्ठस्ययतिनोनहिराज्ञांचसूतकम् ॥ २३ ॥ विवाहोत्सवयज्ञेषुजातेचमृतसूतके ॥ तस्य पूर्वकृतंचान्नंभोज्यंतंमनुरब्रवीत् ॥ २४ ॥ सूतकेयस्तुगृह्णातितदज्ञानान्नदोषभाक् ॥ दातादोषमवाप्नोतियाचकायददन्नपि ॥ २५ ॥ प्रच्छाद्यसूतकंयस्तुददात्यन्नंद्विजायच ॥ ज्ञात्वागृह्णन्तियेविप्रादोषभाजस्तएवहि ॥२६॥ तस्मात्सूतकशुद्ध्यर्थंपितुःकुर्यात्सपिंडनम्॥ ततःपितृगणैःसार्धंपितृलोकंसगच्छति ॥ २७ ॥ द्वादशाहेत्रिपक्षेवाषण्मासेवत्सरेऽपिवा ॥ सपिंडीकरणंप्रोक्तंमुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ २८ ॥ मयातुप्रोच्यतेतार्क्ष्यशास्त्रधर्मानुसारतः ॥ चतुर्णामेववर्णानांद्वादशाहेसपिंडनम् ॥ २९ ॥ आनंत्यात्कलिधर्माणांपुंसांचैवा युषःक्षयात ॥ अस्थिरत्वाच्छरीरस्यद्वादशाहेप्रशस्यते ॥ ३० ॥

वास्ते पिताका सपिंडन करे. तिस सपिंडसे वो पिता पितृगणोंके संग पितृलोकमें जाता है ॥ २७ ॥ बारहवें दिन, त्रिपक्ष श्राद्धमें, षाण्मासिक श्राद्धमें, या सांवत्सर श्राद्धमें, तत्वद्रष्टा मुनियोंने सपिंडीकरण कहा है ॥ २८ ॥ हे गरुड ! मैंने तो शास्त्रधर्मके अनुसार चारोंही वर्णोंको बारहवें दिन सपिंडन कर्म कहा है ॥ २९ ॥ कारण कलियुगमें धर्मोंके अनंतपनासे, पुरुषोंके आयुष्यका नाश अचानक होनेसे, और शरीरकी अस्थिरतासे, बारहवेंही दिन सपिंडीकरण श्रेष्ठ कहा है ॥ ३० ॥

उपवीत संस्कार, उत्सव आदि, व्रतके उद्यापन, विवाहादि, ये गृहस्थ पुरुष मरनेपर नहीं होते हैं ॥ ३१ ॥ भिक्षुक भिक्षा नहीं लेता है, पितर हंतकार नहीं लेते हैं, नित्यनैमित्तिक कर्म लोप होता है, जहांतक पिंड नहीं मिलाया जाता है ॥ ३२ ॥ कर्मलोपसे प्रत्यवायी अर्थात् दोषभागी होता है. तिसीसे सपिंडीकर्म निरग्नि वा साग्निक बारहवें दिन करै ॥ ३३ ॥ जो फल सर्व तीर्थोंमें स्नान करनेसे होता है, और सर्व यज्ञ करनेसे जो फल होता है, वो फल बारहवें दिवस सपिंडी करनेसे होता है ॥ ३४ ॥

व्रतबंधोत्सवादीनिव्रतस्योद्यापनानिच ॥ विवाहादिर्भवेन्नैवमृतेचगृहमेधिनि ॥ ३१ ॥ भिक्षुर्भिक्षांनगृह्णातिहंतकारोनगृह्यते ॥
नित्यंनैमित्तिकंलुप्येद्यावत्पिंडंनमेलितम् ॥ ३२ ॥ कर्मलोपात्प्रत्यवायीभवेत्तस्मात्सपिंडनम् ॥ निरग्निकःसाग्निकोवाद्वादशाहेस
माचरेत् ॥ ३३ ॥ यत्फलंसर्वतीर्थेषुसर्वयज्ञेषुयत्फलम् ॥ तत्फलंसमवाप्नोतिद्वादशाहेसपिंडनात् ॥ ३४ ॥ अतःस्नात्वामृतस्थानेगो
मयेनोपलेपिते ॥ शास्त्रोक्तेनविधानेनसपिंडींकारयेत्सुतः ॥ ३५ ॥ पाद्यार्घ्याचमनीयाद्यैर्विश्वेदेवांश्चपूजयेत् ॥ कौपित्रेविकिरंदत्त्वा
पुनरापउपस्पृशेत् ॥ ३६ ॥ दद्यात्पितामहादीनांत्रीन्पिंडांश्चयथाक्रमम् ॥ वसुरुद्रार्करूपाणांचतुर्थंमृतकस्यच ॥ ३७ ॥ चंदनैस्तुल
सीपत्रैर्धूपैःदीपैःसुभोजनैः ॥ मुखवासैःसुवस्त्रैश्चदक्षिणाभिश्चपूजयेत् ॥ ३८ ॥

इसीसे स्नान करके, मरेहुवेके स्थानको गोबरसे लीपके, शास्त्रोक्त विधिसे पुत्र सपिंडीकर्म करै ॥ ३५ ॥ पाद्य, अर्घ्य, आचमन इत्यादिकोंसे विश्वेदेवोंको पूजना; पीछे विकिरं पिंड देके, हाथ धोकर, आचमन करना ॥ ३६ ॥ अनुक्रमसे वसु, रुद्र, और आदित्यरूप पिता पितामह और प्रपितामहादिकोंको तीन पिंड देने, और चौथा मृतककी पिंड देना ॥ ३७ ॥ चंदन, तुलसीपत्र, धूप, दीप, नैवेद्य, मुखवास, वस्त्र, दाक्षिणा इन्होंसे पूजना ॥ ३८ ॥

प्रेतपिंडके तीन भाग करके, सुवर्णकी शलाकासे पितामह्यादि पिंडोंमें न्यारा न्यारा मिलाना ॥ ३९ ॥ पितामहीके पिंडके संग माताके पिंडको मिलाना और पितामहके पिंडके संग पिताका पिंड मिलाना. ऐसी सपिंडी करना. हे गरुड ! यह हमारा मत है ॥ ४० ॥ जिसका पिता तौ मरजाय और दादा विद्यमान हो उसको प्रपितामहकी आदि ले तीन पिंड देने ॥ ४१ ॥ प्रपितामहादिकोंमें पिताके पिंडके तीन भाग कर, मिलाना. जो पितामही विद्यमान होकर माता अगाड़ी शांत हो जाय तौ ॥ ४२ ॥ माताके श्राद्धमें पिताकी जैसी विधि करना अथवा मेरेमें और महालक्ष्मीमें उन्होंका पिंड मिलाना ॥ ४३ ॥ अपुत्र स्त्रीके सापिंडनादिक पति करै. इस स्त्रीका अपनी सासु-

प्रेतपिंडंत्रिधाकृत्वासुवर्णस्यशलाकया ॥ पितामहादिपिंडेषुमेलयेत्तंपृथक्पृथक् ॥ ३९ ॥ पितामह्यासमंमातुःपितामहसमंपितुः ॥ सपिंडीकरणंकुर्यादितितार्क्ष्यमतंमम ॥ ४० ॥ मृतेपितरियस्याथविद्यतेचपितामहः ॥ तेनदेयास्त्रयःपिंडाःप्रपितामहपूर्वकाः ॥ ४१ ॥ तेभ्यश्चपैतृकंपिंडंमेलयेत्तंत्रिधाकृतम् ॥ मातर्यग्रेप्रशांतायांविद्यतेचपितामही ॥ ४२ ॥ तदामातृकश्राद्धेऽपिकुर्यात्पैतृकवद्विधिः ॥ यद्वामयिमहालक्ष्म्यांतयोःपिंडंचमेलयेत् ॥ ४३ ॥ अपुत्रायाःस्त्रियाःकुर्यात्पतिःसापिंडनादिकम् ॥ श्वश्र्वादिभिःसहैवास्याःसपिंडीकरणंभवेत् ॥ ४४ ॥ भर्त्रादिभिस्त्रिभिःकार्यंसपिंडीकरणंस्त्रियाः ॥ नैतन्ममसमतंतार्क्ष्यमत्यासापिंड्यमर्हति ॥ ४५ ॥ एकांचितांसमारूढौ दंपतीयदिकाश्यप ॥ तृणमंतरतःकृत्वाश्वशुरादेस्तदाचरेत् ॥ ४६ ॥

आदिकनके संग सपिंडीकरण होता है ॥ ४४ ॥ पाति पिता पितामहादिकोंके पिंडके संग, स्त्रीका पिंड मिला देना. हे गरुड ! यह मेरा मत नहीं है; कारण स्त्रियोंका स्त्रियोंके संग और पुरुषोंका पुरुषोंके संग सपिंडी कर्म करना यह हमारा मत है ॥ ४५ ॥ हे गरुड ! कदाचित् स्त्री पुरुष दोनों एक चितामें दग्ध हुये हों तब सपिंडीकर्म करते समय. तृण बीचमें धर कर, पुरुषका पिताआदिके संग और स्त्रीका सासुआदिके संग सपिंडी कर्म करना ॥ ४६ ॥

पुत्र प्रथम तौ पिताके पिंडादिक कर उसके पीछे वही पुत्र स्नान करके, सतीका सपिंडन करै ॥ ४७ ॥ जो सती पतिके दश दिनके भीतर चितामें दग्ध होती है उसकाही भर्ताके सपिंडीके दिनमें शय्यादान और सपिंडन करना ॥ ४८ ॥ हे गरुड़ ! इस विधिसे सपिंडन करके, पितृतर्पण करना. वेदमंत्रोंसे स्वधाकार उच्चारण करना ॥ ४९ ॥ पीछे अभ्यागत ब्राह्मणका भोजन कराना. हंतकार सदा बोलना. उस हंतकारसे पितर, देव, मुनि, दानव ये सब प्रसन्न होते हैं ॥ ५० ॥ एक ग्रासकी भिक्षा होती है; इन चार

एकएवसुतःकुर्यादादौपिंडादिकंपितुः ॥ तदूर्ध्वंचप्रकुर्वीतसत्याःस्नानंपुनश्चरेत् ॥ ४७ ॥ हुताशंयासमारूढादशाहाभ्यंतरेसती ॥
तस्याभर्तुर्दिनेकार्यंशय्यादानंसपिंडनम् ॥४८॥ कृत्वासपिंडनंतार्क्ष्यप्रकुर्यात्पितृतर्पणम् ॥ उदाहरेत्स्वधाकारंवेदमंत्रैःसमन्वितम् ॥४९॥
अतिथिंभोजयेत्पश्चाद्धंतकारंचसर्वदा ॥ तेनतृप्यंतिपितरोमुनयोदेवदानवाः ॥ ५० ॥ ग्रासमात्राभवेद्भिक्षाचतुर्ग्रासंतुपुष्कलम् ॥
पुष्कलानिचचत्वारिहंतकारोविधीयते ॥ ५१ ॥ सपिंड्यांविप्रचरणौपूजयेचंदनाक्षतैः ॥ दानंतस्मैप्रदातव्यमक्षय्यंतृप्तिहेतवे ॥ ५२ ॥
वर्षवृत्तिंघृतंचान्नंसुवर्णंरजतंसुगाम् ॥ अश्वंगजंरथंभूमिमाचार्यायप्रदापयेत् ॥ ५३ ॥ ततश्चपूजयेन्मंत्रैःस्वस्तिवाचनपूर्वकम् ॥ कुंकुमा
क्षतनैवेद्यैर्ग्रहान्देवींविनायकम् ॥ ५४ ॥ आचार्यस्तुततःकुर्यादभिषेकंसमंत्रकम् ॥ बद्ध्वासूत्रंकरेदद्यान्मंत्रपूतांस्तथाऽक्षतान् ॥ ५५ ॥

ग्रासोंका पुष्कल होता है और चार पुष्कलोंका हंतकार कहा है ॥ ५१ ॥ सपिंडीकर्ममें ब्राह्मणके चरणोंको चंदन और अक्षतोंसे पूजना, उसको अक्षय तृप्तिके लिये दान देना ॥ ५२ ॥ वर्षभरकी जीविका, घृत, अन्न, सुवर्ण, चांदी, सुशीला गौ, घोड़ा, हाथी, रथ, पृथ्वी ये आचार्यको देने ॥ ५३ ॥ पीछे मंत्रोंसे स्वस्तिवाचनपूर्वक कुंकुम, अक्षत, नैवेद्य इन्होंसे ग्रह, देवी, गणेश, इन्होंकी पूजना ॥ ५४ ॥ पीछे आचार्य मंत्रसहित अभिषेक करै और हाथमें सूत्र बांधकर, मंत्रसे पवित्र अक्षत (आशीश) देवै ॥ ५५ ॥

पीछे नानाप्रकारके सुंदर मिष्टान्नोंसे ब्राह्मणभोजन करना; दक्षिणासहित उन ब्राह्मणोंको जलअन्नसहित बारह घट देना ॥ ५६ ॥ जल, शस्त्र, प्रत्यंचा, दंड ये ब्राह्मणभोजनसे पीछे अनुक्रमसे ब्राह्मणादि वर्णोंसे स्पर्श करने. जैसें कि–ब्राह्मण जल, क्षत्रिय शस्त्र, वैश्य प्रत्यंचा, शूद्र दंडको स्पर्श करै ॥ ५७ ॥ ऐसे सपिंडन करके, क्रियाके वस्त्रोंको त्यागना. स्वच्छ सपेद वस्त्र पहरके, शय्यादान देना ॥ ५८ ॥ शय्यादानको इंद्रसहित सर्वदेवता सराहते हैं तिसीसे मरेपीछे अथवा जीवता हुवा शय्यादान देना ॥ ५९ ॥ सो शय्या सारके काठकी, रमणीक, सुंदर चित्र विचित्र जड़ीहुई, रेसमी डोरियोंसे बिनीहुई, सुवर्णके पत्तोंसे जडित ॥ ६० ॥ हंस जैसी स्वच्छ, उज्ज्वल

ततश्चभोजयेद्विप्रान्मिष्टान्नैर्विविधैःशुभैः ॥ दद्यात्सदक्षिणांस्तेभ्यःसजलान्नान्द्विषड्घटान् ॥ ५६ ॥ वार्यायुधप्रतोदस्तुदंडस्तु द्विजभोजनात् ॥ स्प्रष्टव्यानंतरंवर्णैःशुद्धयेरंस्तेततःक्रमात् ॥ ५७ ॥ एवंसपिंडनंकृत्वाक्रियावस्त्राणिसंत्यजेत् ॥ शुक्लांबरधरोभूत्वा शय्यादानंप्रदापयेत् ॥ ५८ ॥ शय्यादानंप्रशंसंतिसर्वेदेवाःसवासवाः ॥ तस्माच्छय्याप्रदातव्यामरणेजीवितेऽपिवा ॥ ५९ ॥ सार दारुमयींरम्यांसुचित्रैश्चित्रितांदृढाम् ॥ पट्टसूत्रैर्विततनितरांहेमपत्रैरलंकृताम् ॥ ६० ॥ हंसतूलीप्रतिच्छन्नांशुभशीर्षोपधानिकाम् ॥ प्रच्छादनपटीयुक्तांपुष्पगंधैःसुवासिताम् ॥ ६१ ॥ दिव्यबंधैःसुबद्धांचसुविशालांसुखप्रदाम् ॥ शय्यामेवंविधांकृत्वाह्यास्तृतायां न्यसेद्भुवि ॥ ६२ ॥ छत्रंदीपालयंरौप्यंचामरासनभाजनम् ॥ भृंगारकारकादर्शंपंचवर्णवितानकम् ॥ ६३ ॥

कोमल प्रच्छादनवस्त्रसे संयुक्त, सुंदर शीर्षोपधानिक अर्थात् तकिया जिसपर ऊपर सुंदर ढकनेको वस्त्र, पुष्प, अतर अर्गजासे सुगंधित, ॥ ६१ ॥ दिव्य बंधनोंसे बँधी, बड़ी चौंडी, सुख देनेवाली ऐसी शय्या कराके, जाजम बिछी हुई पृथ्वीपर स्थापित करना ॥ ६२ ॥ छत्र, रूपाको दीपक, चामर, आसन, पात्र, गडुई, कलश, काच यह सामग्री धरके, ऊपर पंचरंग चँदवा बांधना ॥ ६३ ॥

औरभी जो कुछ शय्याकी सामग्री हों वह समग्र शय्याके चौतरफ स्थापित करना ॥ ६४ ॥ उसपर सुवर्णकी लक्ष्मीजीसहित श्रीहरिको स्थपपित करने. कैसे कि--हरि संपूर्ण आभूषण और शस्त्र तथा वस्त्रोंसे संयुक्त ॥ ६५ ॥ और सौभाग्यवती स्त्रियोंकी शय्या हो तौ कज्जल, महाउर, कुंकुम, वस्त्र, आभूषण ये संपूर्ण देने ॥ ६६ ॥ पीछे स्त्रीसहित ब्राह्मणको गंधपुष्पोंसे शोभित कर, कुंडल अँगूठीआदि आभूषणोंसे, सुवर्णके कंठसूत्रसे शोभित करना ॥ ६७ ॥ पाग, दुपट्टा, अंगरखा पहराय

शयनस्यभवेत्किंचिद्यच्चान्यदुपकारकम्॥ तत्सर्वंपरितैस्तस्याःस्वेस्वेस्थानेनियोजयेत्॥६४॥तस्यांसंस्थापयेद्धैमंहरिंलक्ष्मीसमन्वितम्॥
सर्वाभरणसंयुक्तमायुधांबरसंयुतम् ॥६५॥ स्त्रीणांचशयनेधृत्वाकज्जलालक्तकुंकुमम्॥वस्त्रंभूषादिकंयच्चसर्वमेवप्रदापयेत् ॥ ६६ ॥ ततो
विप्रंसपत्नीकंगंधपुष्पैरलंकृतम् ॥ कर्णांगुलीयाभरणैःकंठसूत्रैश्चकांचनैः ॥ ६७ ॥ उष्णीषमुत्तरीयंचचोलकंपरिधायच ॥ स्थापये
त्सुखशय्यायांलक्ष्मीनारायणाग्रतः ॥ ६८ ॥ कुंकुमैःपुष्पमालाभिर्हरिंलक्ष्मींसमर्चयेत् ॥ पूजयेल्लोकपालांश्चग्रहान्देवींविनायकम्
॥ ६९ ॥ उत्तराभिमुखोभूत्वागृहीत्वाकुसुमांजलिम् ॥ उच्चारयेदिमंमंत्रंविप्रस्यपुरतःस्थितः ॥ ७० ॥ यथाकृष्णत्वदीयास्तिशय्या
क्षीरोदसागरे ॥ तथाभूयादशून्येयंममजन्मनिजन्मनि ॥ ७१ ॥

सुखशय्यापर लक्ष्मीनारायणके अगाड़ी स्थापित करने ॥ ६८ ॥ कुंकुम और पुष्पोंकी मालासे हरि और लक्ष्मीजीको पूजना तथा लोकपाल, ग्रह, देवी विनायक इन्होंका पूजन करना ॥ ६९ ॥ उत्तरके तरफ मुख करके पुष्पांजली लेकर, ब्राह्मणके अगाड़ी स्थित होकर, यह मंत्र उच्चारण करै ॥ ७० ॥ हे कृष्ण ! जैसे आपकी क्षीरसमुद्रमें शय्या है तैसे मेरी यह जन्मजन्ममें अशून्य हो ॥ ७१ ॥

ऐसे पुष्पांजली ब्राह्मण और हरिकी प्रतिमाको देना; पीछे सब सामग्रीसहित संकल्पसे शय्यादान देना ॥ ७२॥ व्रतका उपदेश करनेवाला वेदवादी गुरू हो उसको देना. 'हे ब्राह्मण ! इसको ग्रहण करो' ऐसे कहकर 'कौन देताहै' ऐसा बोलना ॥ ७३ ॥ शय्यापर स्थित ऐसा ब्राह्मण लक्ष्मी, हरि इन्होंको आन्दोलन करना पीछे प्रदक्षिणा करके नमस्कार करके विसर्जनकर देना ॥ ७४ ॥ वैभव हो तौ सर्ववस्तुवोंसे सहित सुखसे निद्रा करनेके वास्ते शय्या और अत्यंत सुंदर घर दान देना ॥ ७५ ॥ जो जीवता हुवा,

एवंपुष्पांजलिंविप्रेप्रतिमायांहरेःक्षिपेत् ॥ ततःसोपस्करंशय्यादानंसंकल्पपूर्वकम् ॥ ७२ ॥ दद्याद्व्रतोपदेष्ट्रेचगुरवेब्रह्मवादिने ॥ गृहाणब्राह्मणैनांत्वंकोददातीतिकीर्तयन् ॥ ७३ ॥ आंदोलयेद्द्विजंलक्ष्मींहरिंचशयनेस्थितम् ॥ ततःप्रदक्षिणीकृत्यप्रणिपत्यविसर्जयेत् ॥ ७४ ॥ सर्वोपकरणैर्युक्तंप्रदद्यादंतिसुंदरम् ॥ शयाय्यांसुखसुप्त्यर्थंगृहंचविभवेसति ॥ ७५ ॥ जीवमानःस्वहस्तेनयदिशय्यांददातियः ॥ तज्जीवतावृषोत्सर्गंपर्वणीषुसमाचरेत् ॥ ७६ ॥ इयमेकस्यदातव्याबहूनांनकदाचन ॥ साविभक्ताचविक्रीतादातारंपातयत्यधः ॥ ७७ ॥ पात्रेप्रदायशयनंवांछितंफलमाप्नुयात् ॥ पिताचंदातातंनयःपरत्रेहचमोदते ॥ पुरंदरगृहेदिव्येसूर्यपुत्रालयेऽपिच ॥ ७८ ॥ उपतिष्ठेन्नसंदेहःशय्यादानप्रभावतः ॥ ७९ ॥

अपने हाथसे शय्यादान देताहै और वृषोत्सर्ग करताहै उसने ये दोनों पर्वतिथियोंमें आचरण करना ॥ ७६ ॥ यह शय्या एकको देना; बहुतोंको कभी नहीं देना. वह शय्या विभाग हुई और विक्रीभई तो देनेवालेको नरकमें डालती है ॥ ७७ ॥ सुपात्रको शय्या देनेसे मनोवांछित फल प्राप्त होताहै. पिता और पुत्र परलोकमें और इसलोकमें आनंद भोगते हैं, शय्यादानके प्रभावसे पुरंदरके दिव्य घरमें (स्वर्गमें) अथवा सूर्यपुत्रके घरमें (सूर्यलोकमें) प्राप्त होताहै. इसमें संदेह नहीं ॥ ७८ ॥ ७९ ॥

श्रेष्ठ विमानपर बैठकर, अप्सराओंके समूहसे सेवित हुवा जहांतक महाप्रलय हो तहांतक रोगरहित होकर स्थिर रहताहै ॥८०॥ सर्व तीर्थोंमें स्नान करनेसे जो पुण्य होताहै, और सर्व पर्वदिनोंमें दान देनेसे जो पुण्य होताहै, उससे अधिक पुण्य शय्यादानका होताहै ॥ ८१ ॥ ऐसे पुत्र शय्यादान देकर, पददान देवै. सो मेरा कहा सुनो. मैं तुमको यथार्थ कहताहूं ॥ ८२ ॥ छत्र, पगरखी, वस्त्र, मुद्रिका, कमंडलु, आसन, पंचपात्र, ॥ ८३ ॥ दंड, ताम्रपात्र, आमान्न, भोजन, अर्घ्य व यज्ञोपवीत इन तेरह वस्तुवोंसे

विमानवरमारूढःसेव्यमानोऽप्सरोगणैः ॥ आभूतसंप्लवंयावत्तिष्ठत्यातंकवर्जितः ॥ ८० ॥ सर्वतीर्थेषुयत्पुण्यंसर्वपर्वदिनेषुच ॥ तेभ्य श्चाप्यधिकंपुण्यंशय्यादानोद्भवंभवेत् ॥८१॥ एवंदत्त्वासुतःशय्यांपददानंप्रदापयेत् ॥ तच्छृणुध्वमयाख्यातंयथावत्कथयामिते ॥८२॥ छत्रोपानहवस्त्राणिमुद्रिकाचकमंडलुः ॥ आसनंपंचपात्राणिपदंपंचविधंस्मृतम् ॥ ८३ ॥ दंडेनताम्रपात्रेणह्यामान्नैर्भोजनैरपि ॥ अर्घ्ययज्ञोपवीतैश्चपदंसंपूर्णतांव्रजेत् ॥८४॥ त्रयोदशपदानीत्थंयथाशक्त्याविधायच ॥ त्रयोदशभ्योविप्रेभ्यःप्रदद्याद्द्वादशेऽहनि ॥८५॥ अनेनपददानेनधार्मिकायांतिसद्गतिम् ॥ यममार्गगतानांचपददानंसुखप्रदम् ॥ ८६ ॥ आतपस्तत्रवैरौद्रोदह्यतेयेनमानवः ॥ छत्रदाने नसुच्छायाजायतेतस्यमूर्धनि ॥ ८७ ॥ अतिकंटकसंकीर्णेयमलोकस्यवर्त्मनि ॥ अश्वारूढाश्चतेयांतिददतेयद्युपानहौ ॥ ८८ ॥

पददान संपूर्ण होताहै ॥ ८४ ॥ ऐसी विधिसे तेरह पद यथाशक्ति करके, तेरह ब्राह्मणोंको बारहवें दिन देने ॥ ८५ ॥ इस पददानसे धर्मात्मा श्रेष्ठ गतिको प्राप्त होता है. और यममार्गमें गये हुवेको पददान सुख देताहै ॥ ८६ ॥ वहां सूर्यताप बड़ा भयंकर है जिससे मनुष्य दग्ध होताहै; इसलिये यहां जो छत्रदान देताहै उससे मस्तकपर सुंदर छाया होतीहै ॥ ८७ ॥ कांटोंसे अत्यंत व्याप्त ऐसा यमलोकका मार्ग है सो जो यहां पगरखी देतेहैं वे घोड़ेपर बैठे जातेहैं ॥ ८८ ॥

हे गरुड ! शीत, उष्ण, वायु इनके घोर दुःख वहां हैं; इन्होंको वस्त्रदानके प्रभावसे सुखसे तिरताहै ॥ ८९ ॥ जो मुद्रिकादान देताहै उसको काले, पीले बड़े भयंकर विकराल, यमके दूत उसको मार्गमें नहीं पीड़ा देतेहैं ॥ ९० ॥ बहोत घामसे व्याप्त, निर्वात, जलरहित ऐसे मार्गमें कमंडलुके देनेसे तृषायुत हुवा जल पीताहै ॥ ९१ ॥ जो मृतकके उद्देशसे ताम्रका जलपात्र देताहै उसको हजार पानीयशाला दान देनेका जो फल है वो निश्चय प्राप्त होता है ॥ ९२ ॥ यहां आसन पात्र विधिसे ब्राह्म

शीतोष्णवातदुःखानितत्रघोराणिखेचर ॥ वस्त्रदानप्रभावेणसुखंनिस्तरतेपथि ॥ ८९ ॥ यमदूतामहारौद्राःकरालाःकृष्णपिंगलाः ॥
नपीडयंतितंमार्गेमुद्रिकायाःप्रदानतः ॥ ९० ॥ बहुधर्मसमाकीर्णेनिर्वातेतोयवर्जिते ॥ कमंडलुप्रदानेनतृषितःपिबतेजलम् ॥ ९१ ॥
मृतोद्देशेनयोदद्यादुदपात्रंचताम्रजम् ॥ प्रपादानसहस्रस्ययत्फलंसोऽश्नुतेध्रुवम् ॥ ९२ ॥ आसनेभोजनेचैवदत्तेसम्यग्द्विजातये ॥
सुखेनभुंक्तेपाथेयंप्रतिगच्छन्शनैःशनैः ॥ ९३ ॥ एवंसपिंडनदिनेदत्त्वादानंविधानतः ॥ बहून्संभोजयेद्विप्रान्यःश्वपाकादिका
नपि ॥ ९४ ॥ ततःसपिंडनादूर्ध्वमर्वाक्संवत्सरादपि ॥ प्रतिमासंप्रदातव्योजलकुंभःसपिंडकः ॥ ९५ ॥ कृतस्यकरणंनास्तिप्रे
तकार्याद्दतेखग ॥ प्रेतार्थंतुपुनःकुर्यादक्षय्यतृप्तिहेतवे ॥ ९६ ॥

णको दियाहुवा सुखकरके, परलोकमें योग्य फल भोगता है. मार्गमें शनैः शनैः जाताहै ॥ ९३ ॥ ऐसे सपिंडनदिनमें विधिसे दान देकर, बहुत ब्राह्मण भोजन कराने और चांडालादिकोंकोभी अन्न देना ॥ ९४ ॥ पीछे सपिंडनके उपरांत वर्षतक प्रतिमास पिंडसहित जलकलश देना ॥ ९५ ॥ हे गरुड ! प्रेतकार्यके विना एकवार करे हुवेको फिर करना नहीं. प्रेतके लिये तो अक्षय तृप्तिके वास्ते वारंवार करना ॥ ९६ ॥

अब मासिक श्राद्धका और आब्दिक श्राद्धका विशेष कहता हूं और प्रथम पाक्षिक श्राद्धकी विशेषता पौर्णमास्यादि तिथियोंमें मरे हुवे पुरुषकी विधि कहता हूं ॥ ९७ ॥ पौर्णमासीको जो मरता है उसकी अमावस्याके अगाडीकी चतुर्थी ऊनिका अर्थात् पाक्षिक श्राद्धतिथि है और जो चतुर्थीको मरता है उसकी दूसरी चतुर्थीके बाद नवमी ऊनिका है ॥ ९८ ॥ और नवमीको जो मरता है उसकी दूसरी नवमीके बाद चतुर्दशी ऊनिका तिथि है. ऐसे बीशवें दिन पाक्षिक श्राद्ध करना ॥ ९९ ॥ अब मासिक श्राद्धकीभी अधिक विधि कहते हैं. जो एकही मास दो संक्रांतिसे संयुक्त हो उसको क्षयमास कहते हैं, जिसमें संक्रांति नहीं हो उसको मलमास कहते हैं. जो कार्तिक

अतोविशेषंवक्ष्यामिमासिकस्याब्दिकस्यच ॥ पाक्षिकस्यविशेषंचविशेषतिथिषुमृते ॥९७॥ पौर्णमास्यांमृतोयस्तुचतुर्थीतस्यऊनिका ॥
चतुर्थ्यांतुमृतोयस्तुनवमीतस्यऊनिका ॥९८॥ नवम्यांतुमृतोयस्तुरिक्तातस्यचतुर्दशी ॥ इत्येवंपाक्षिकंश्राद्धंकुर्याद्विंशतिमेदिने ॥९९॥
एकएवयदामासःसंक्रांतिद्वयसंयुतः ॥ मासद्वयगतंश्राद्धंमलमासेहिशस्यते ॥१००॥ एकस्मिन्मासिमासौद्वौयदिस्यातांतयोर्द्वयोः ॥
तावेवपक्षौताएवतिथयस्त्रिंशदेवहि ॥ १ ॥ तिथ्यर्धेप्रथमेपूर्वोद्वितीयेऽर्धेतदुत्तरः ॥ मासावितिबुधैश्चिंत्यौमलमासस्यमध्यगौ ॥ २ ॥

और मार्गशीर्ष क्षयमास हो तब कार्तिक मार्गशीर्षसंबंधी व्रत श्राद्धादिक जिस पक्षमें जिस तिथिमें जिस अपराह्नकादि कालमें कहा है वे मलमासमें तहां तहां करना अर्थात् कार्तिक क्षय हो तो मार्गशीर्षमें करना, मार्गशीर्ष क्षय हो तो पौषमें करना ॥ १०० ॥ अब एक मासमें दो महीना हों उसका निर्धार कहते हैं. जो एक मासमें दो महीना हों तो दोनों मासोंकी वेहो २ तिथियां तिथी जाननी ॥ १ ॥ और जो अधिक मासमें मर जाय तौ उसका मासिक वार्षिक श्राद्ध तिथिके पूर्वार्द्धमें मरा होय वो कृष्णपक्षमें करना और तिथिके उत्तरार्द्धमें मरा हो तो शुक्लपक्षमें करना परंतु तिथि तौ मृत्यु हो सोई दिन लेना ॥ २ ॥

हे गरुड ! मलमासमें मरेहुएका सपिंडीकरण बारहवें दिनं करना. तैसेही मासिक श्राद्ध और वार्षिक श्राद्ध प्रथमही करना॥ ३ ॥ वर्षके मध्यम जो अधिक मास हो तौ तेरहवें महीनेमें प्रेतकी प्रथम वर्षकी क्रिया करनी ॥ ४ ॥ असंक्रांतिमासमें पिंडाविना श्राद्ध करना; संक्रांति हो उसमें पिंडसहित करना. ऐसे वर्ष वर्ष तिसे मलमासमें श्राद्धदिनकी वंध्यत्वनिवृत्तिके लिये पिताकें उद्देशसे ब्राह्मणभोजन कराय, शुद्धमासमें सपिंड श्राद्ध करना ॥ ५ ॥ ऐसे वर्ष पूरा होजाय तब वार्षिक श्राद्ध करना. उंस

असंक्रांतेचकर्तव्यंसपिंडीकरणंखग ॥ तथैवमासिकंश्राद्धंवार्षिकंप्रथमंतथा ॥ ३ ॥ संवत्सरस्यमध्येतुयादिस्यादधिमासकः ॥ तदात्रयो
दशेमासिक्रियाप्रेतस्यवार्षिकी ॥ ४ ॥ पिंडवर्जमसंक्रांतेसंक्रांतेपिंडसंयुतम् ॥ प्रतिसंवत्सरंश्राद्धमेवंमासद्वयेपिच ॥ ५ ॥ एवं
संवत्सरेपूर्णेवार्षिकंश्राद्धमाचरेत् ॥ तस्मिन्नपिविशेषेणभोजनीयाद्विजातयः ॥ ६ ॥ कुर्यात्संवत्सरादूर्ध्वंश्राद्धेपिंडत्रयंसदा ॥ एको
द्दिष्टंनकर्तव्यंतेनस्यात्पितृघातकः ॥ ७ ॥ तीर्थश्राद्धंगयाश्राद्धंगजच्छायंचपैतृकम् ॥ अब्दमध्येनकुर्वीतग्रहणेनयुगादिषु ॥ ८ ॥
यदापुत्रेणवैकार्यंगयाश्राद्धंखगेश्वर ॥ तदासंवत्सरादूर्ध्वंकर्तव्यंपितृभक्तितः ॥ ९ ॥ गयाश्राद्धात्प्रमुच्यंतेपितरोभवसागरात् ॥
गदाधरानुग्रहेणतेयांतिपरमांगतिम् ॥ १० ॥

वार्षिकमें ज्यादा ब्राह्मणभोजन कराने ॥ ६ ॥ वर्षके उपरांत श्राद्धमें सदाही तीन पिंड करने. एकोद्दिष्ट वर्ष पीछे नहीं करना. उससे पितृघातक होता है ॥ ७ ॥ पितृसंबंधी तीर्थश्राद्ध, गयाश्राद्ध, गजच्छायाश्राद्ध ये पहले वर्षके मध्यमें नहीं करना. युगादिश्राद्धभी नहीं करना ॥ ८ ॥ हे गरुड ! जो पुत्र गयाश्राद्ध करै तौ पित्रीश्वरोंकी भक्ति करके वर्षके उपरांत करना ॥ ९ ॥ गयाश्राद्धसे पित्रीश्वर संसारसागरसे छूटकर, गदाधर भगवान्के अनुग्रहसे परमगतिको प्राप्त होते हैं ॥ १० ॥

तुलसीकी मंजरीसे विष्णुकी पादुका पूजनी. उसके लवादि तीर्थोंमें अनुक्रमसे दश पिंड देने ॥ ११ ॥ ऐसे करनेसे सात गोत्रोंको और एकसौ एक कुलोंका उद्धार करता है. जो शमीपत्रप्रमाण पिंड गयाशिरपर देता है ॥१२॥ गयापर प्राप्त होकर, जो कुलको आनंदकारी पुत्र श्राद्ध करता है उसका पित्रीश्वरोंको प्रसन्नता देनेवाला वोह जन्म सफल होता है ॥ १३ ॥ अहो गरुड ! पित्रीश्वरोंने गाईभई पूर्वकथा सुननेमें आती है सो सुनो. हिमालयके पार्श्ववर्ती कलापग्रामके उपवनमें मनुके पुत्र इक्ष्वाकु राजाकी देवतोंने

तुलसीमंजरीभिश्चपूजयेद्विष्णुपादुकाम् ॥ तस्यालवादितीर्थेषुपिंडान्दद्याद्यथाक्रमम् ॥ ११॥ उद्धरेत्सप्तगोत्राणिकुलमेकोत्तरंशतम् ॥
शमीपत्रप्रमाणेनपिंडंदद्याद्गयाशिरे ॥ १२ ॥ गयामुपेत्ययःश्राद्धंकरोतिकुलनंदनः ॥ सफलंतस्यतज्जन्मजायतेपितृतुष्टिदम् ॥ १३ ॥
श्रूयतेचापिपितृभिर्गीतागाथाखगेश्वर ॥ इक्ष्वाकोर्मनुपुत्रस्यकलापोपवनेसुरैः ॥ १४ ॥ अपिनस्तेभविष्यंतिकुलेसन्मार्गशीलिनः ॥
गयामुपेत्ययेपिंडान्दास्यंत्यस्माकमादरात् ॥ १५ ॥ एवमामुष्मिकींतार्क्ष्ययःकरोतिक्रियांसुतः ॥ सस्यात्सुखीभवेन्मुक्तःकौशिक
स्यात्मजायथा ॥ १६ ॥ भरद्वाजात्मजाःसप्तभुक्त्वाजन्मपरंपराम् ॥ कृत्वापिगोवधंतार्क्ष्यमुक्ताःपितृप्रसादतः ॥ १७ ॥ सप्तव्याधादशार्णे
षुमृगाःकालंजिरेगिरौ ॥ चक्रवाकाःशरद्वीपेहंसाःसरसिमानसे ॥ १८ ॥

गाई-भई यह कथा है ॥ १४ ॥ अहो ! हमारे कुलमें वे सन्मार्गशील होंयगे कि, जो गयामें जाकर, हमारेको आदरसे पिंड देवें ॥ १५ ॥ हे गरुड ! ऐसे जो पुत्र क्रिया करता है वोह जैसे कौशिकमुनिके पुत्र हुये तैसे सुखी होता है और मुक्त होता है ॥ १६ ॥ भरद्वाजके सात पुत्र जन्मपरंपरा भोगके, गोवधभी करके, हे गरुड ! पित्रीश्वरोंकी कृपासे मोक्ष पाते भये ॥ १७ ॥ दशार्णदेशमें सात व्याध, कालंजरपर्वतमें मृग, शरद्वीपमें चकवा, मानससरोवरमें हंस ॥ १८ ॥

वे कहेहुये पितृभक्तिसे कुरुक्षेत्रमें वेदपारगामी ब्राह्मण होतेभये. पीछे समग्र ब्राह्मणके पुत्र मुक्तिको प्राप्त होतेभये ॥ १९ ॥ तिसींसे सब यत्नसे मनुष्य पितृभक्त होवे; क्योंकि इसलोक और परलोकमें पितृभक्तिसे सुखी होता है ॥ २० ॥ हे गरुड ! यह संपूर्ण और्ध्वदेहिक मैंने तुमको कहा है, जो पुत्रकी वांछा देनेवाला, पवित्र और पित्रीश्वरोंको मुक्ति देनेवाला है ॥ २१ ॥ हे गरुड ! निर्धनभी जो मनुष्य इस कथाको सुनै वोहभी पापोंसे छूटके, दानके फलको प्राप्त होता है ॥ २२ ॥ विधिसे मेरा कहा हुआ, श्राद्धदान

तेपिजाताःकुरुक्षेत्रेब्राह्मणावेदपारगाः॥ पितृभक्त्याचतेसर्वेगतामुक्तिंद्विजात्मजाः ॥ १९ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेनपितृभक्तोभवेन्नरः ॥
इहलोकेपरेवापिपितृभक्त्यासुखीभवेत् ॥ २० ॥ एतत्ताक्ष्यमयाख्यातंसर्वमेवौर्ध्वदेहिकम् ॥ पुत्रवांछाप्रदंपुण्यंपितुर्मुक्तिप्रदायकम्
॥ २१ ॥ निर्धनोऽपिनरःकश्चिद्यःशृणोतिकथामिमाम् ॥ सोऽपिपापविनिर्मुक्तोदानस्यफलमाप्नुयात् ॥ २२ ॥ विधिनाकुरुतेयस्तु
श्राद्धदानंमयोदितम् ॥ शृणुयाद्गारुडंकापिशृणुतस्यापियत्फलम् ॥ २३ ॥ पिताददातिसत्पुत्रान्गोधनानिपितामहः ॥ धनदाताभ
वेत्सोऽपियस्तस्यप्रपितामहः ॥ २४ ॥ दद्याद्विपुलमन्नाद्यंवृद्धस्तुप्रपितामहः ॥ तृप्ताःश्राद्धेनतेसर्वेदत्त्वापुत्रस्यवांछितम् ॥ २५ ॥
गच्छंतिधर्ममार्गैश्चधर्मराजस्यमन्दिरम् ॥ तत्रधर्मसभायांतेतिष्ठंतिपरमादरात् ॥ २६ ॥

जो करता है और गरुडपुराण सुनता है उसको जो फल है सो सुनो ॥ २३ ॥ उसको पिता श्रेष्ठ पुत्रोंको देता है; दादा गोधन देता है और परदादा धन देता है ॥ २४ ॥ पुष्ट अन्नादिक वृद्धप्रपितामह देता है. वे सर्व श्राद्धसे तृप्त होनेसे पुत्रकी इच्छित वस्तु देकर ॥ २५ ॥ धर्ममार्गसे धर्मराजके मंदिरमें जाते हैं. वहां धर्मसभामें वे परमआदरसे स्थित रहते हैं ॥ २६ ॥

सूतजी कहतेहैं–ऐसे श्रीविष्णुसे उक्त ऊर्ध्वदैहिक कर्म अनंत माहात्म्य सुनके, गरुड हर्षको प्राप्त होते भये ॥ २७ ॥ इति श्रीसारोद्धारे गरुडपुराणे ज्ञानबोधिनीभाषाटीकायां सपिंडनादिकर्मनिरूपणं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ गरुडजी पूंछतेहैं कि–यमलोक कैसा है ? कितना बड़ा है ? किसने उसको रचा है ? वह सभा कैसी है ? उस सभामें धर्म किन २ के संग बैठते हैं ? ॥ २ ॥ जो धर्मात्मा धर्ममार्गसे धर्मराजके मंदिरमें जाते हैं उन धर्मोंको तथा धर्ममार्गोंको हे दयानिधे ! आप हमारेको कहो ॥ २ ॥ अब

सूतउवाच ॥ एवंश्रीविष्णुनाप्रोक्तमौर्ध्वदानसमुद्भवम् ॥ श्रुत्वामाहात्म्यमतुलंगरुडोहर्षमागतः ॥ २७ ॥ इतिश्रीगरुडपुराणेसारोद्धारेसपिंडनादिसर्वकर्मनिरूपणंनामत्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ गरुडउवाच ॥ यमलोकःकियन्मात्रःकीदृशःकेननिर्मितः ॥ सभाच कीदृशीतस्यांधर्मआस्तेचकैःसह ॥ १ ॥ येधर्ममार्गैर्गच्छंतिधार्मिकाधर्ममन्दिरम् ॥ तान्धर्मानपिमार्गांश्चममाख्याहिदयानिधे ॥ २ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ शृणुतार्क्ष्यप्रवक्ष्यामियद्गम्यंनारदादिभिः ॥ तद्धर्मनगरंदिव्यंमहापुण्यैरवाप्यते ॥ ३ ॥ याम्यनैर्ऋतयोर्मध्येपुरंवैवस्वतस्ययत् ॥ सर्ववज्रमयंदिव्यमभेद्यंतत्सुरासुरैः ॥ ४ ॥ चतुरस्रंचतुर्द्वारमुच्चप्राकारवेष्टितम् ॥ योजनानांसहस्रंहिप्रमाणेन तदुच्यते ॥ ५ ॥ तस्मिन्पुरेऽस्तिसुभगंचित्रगुप्तस्यमन्दिरम् ॥ पंचविंशतिसंख्याकैर्योजनैर्विस्तृतायतम् ॥ ६ ॥

श्रीभगवान् कहते हैं–हे गरुड ! सुनो. जो नारदादि मुनियोंसे जाननेमें आवै ऐसा धर्मराजका दिव्य नगर है. वो महा पुण्यवान्को प्राप्त होता है ॥ ३ ॥ जों दक्षिण और नैर्ऋत्यके मध्यमें वैवस्वतका नगर है वो समग्र वज्रमणिमय है. देवदानवोंसे अभेद्य है ॥ ४ ॥ उसे चार दरवाजे हैं, चौकोन है, उच्च प्राकार (परकोटा) से वेष्टित है हजार योजन प्रमाण लंबा है ऐसा कहते हैं ॥ ५ ॥ उस पुरमें सुंदर चित्रगुप्तका मंदिर है. पचीस योजन लंबा चौंड़ा है ॥ ६ ॥

दश योजन ऊंचा है; महान् दिव्य है; लोहाके परकोटसे वेष्टित है, सैकडों बन्दनवार ध्वजा पताकावोंसे शोभित है ॥ ७ ॥ विमानोंके समूहसे व्याप्त हो रहा है. गीत और बाजोंसे सुंदर नादित है; श्रेष्ठ चित्रोंसे चित्रित है; विश्वकर्मा आदिकोंसे रचा गया है ॥ ८ ॥ बगीचा व उपवनोंसे रमणीक है; नानाप्रकारके पक्षियोंसे शब्दायमान है. गंधर्व अप्सराओंसे चहूंतरफसे सेवित है ॥ ९ ॥ उस सभामें चित्रगुप्त अपने परम अद्भुत आसनपर बैठे मनुष्योंकी आयु जैसी है तैसी गिनते हैं ॥ १० ॥ वोह यमराज सुकृत और

दशोच्छ्रितंमहादिव्यंलोहप्राकारवेष्टितम् ॥ प्रतोलीशतसंचारंपताकाध्वजभूषितम् ॥ ७ ॥ विमानगणसंकीर्णंगीतवादित्रनादितम् ॥ चित्रितंचित्रकुशलैर्निर्मितंदेवशिल्पिभिः ॥ ८ ॥ उद्यानोपवनैरम्यंनानाविहगकूजितम् ॥ गंधर्वैरप्सरोभिश्चसमंतात्परिवारितम् ॥ ९ ॥ तत्सभायांचित्रगुप्तःस्वासनेपरमाद्भुते ॥ संस्थितोगणयेदायुर्मानुषाणांयथातथम् ॥ १० ॥ नमुह्यतिकथंचित्ससुकृतेदुष्कृतेऽपिवा ॥ यद्येनोपार्जितंकर्मशुभंवायदिवाऽशुभम् ॥ ११ ॥ तत्सर्वंभुंजतेतत्राचित्रगुप्तस्यशासनात् ॥ चित्रगुप्तालयात्प्राच्यांज्वरस्यास्तिमहागृहम् ॥ १२ ॥ दक्षिणस्यांचशूलस्यलूताविस्फोटयोस्तथा ॥ पश्चिमेकालपाशःस्यादजीर्णस्यारुचेस्तथा ॥ १३ ॥ उदीच्यांराजरोगोऽस्तिपांडुरोगस्तथैवच ॥ ऐशान्यांतुशिरोर्तिःस्यादाग्नेय्यामस्तिमूर्च्छना ॥ १४ ॥

दुष्कृतमें कभी मोहको नहीं प्राप्त होते हैं. जो जिसकरके सुकृत वा दुष्कृतसंचय किया है ॥ ११ ॥ वे सब वहां चित्रगुप्तकी आज्ञासे भोगते हैं. चित्रगुप्तके स्थानसे पूर्वमें ज्वरका महान स्थान है ॥ १२ ॥ दक्षिणदिशामें शूलका और लूताविस्फोटकका स्थान है. पश्चिममें कालपाश, अजीर्ण और अरुचि 'ये' राग रहते हैं ॥ १३ ॥ उत्तरमें (क्षयरोग) राजरोग है; पांडुरोग है; ईशानमें शिरपीडा है, अग्निकोणमें मूर्छारोग है ॥ १४ ॥

नैर्ऋत्यमें अतीसार है, वायव्यमें शीत व दाह रोग हैं, और इन्होंको आदिले औरभी रोगोंसे संयुक्त है ॥ १५ ॥ चित्रगुप्तभी मनुष्योंके शुभाशुभ लिखते हैं. ऐसे चित्रगुप्तके स्थानसे अगाड़ी वीस योजन ॥ १६ ॥ पुरके मध्य दिव्य धर्मराजका मंदिर है. वहां रत्नमयी दिव्य बिजली, अग्नि, सूर्य, इन्होंकीसी कांति है ॥ १७ ॥ दोसौ योजन विस्तारमें और चोड़ा है, पचास योजन ऊंचा है ॥ १८ ॥ हजारों स्तंभोंसे धारित है, वैडूर्य मणियोंसे जडित है, कांचनसे शोभित है, अनेक प्रकारके महल झरोखा-

अतिसारोनैर्ऋतेतुवायव्यांशीतदाहकौ ॥ एवमादिभिरन्यैश्चव्याधिभिःपरिवारितः ॥ १५ ॥ लिखतेचित्रगुप्तस्तुमानुषाणांशुभाशुभम् ॥ चित्रगुप्तालयादग्रेयोजनानांचविंशतिः ॥ १६ ॥ पुरमध्येमहादिव्यंधर्मराजस्यमंदिरम् ॥ अस्तिरत्नमयंदिव्यंविद्युज्ज्वालार्कवर्चसम् ॥ १७ ॥ द्विशतंयोजनानांचविस्तारायामतःस्फुटम् ॥ पंचाशच्चप्रमाणेनयोजनानांसमुच्छ्रितम् ॥ १८ ॥ धृतंस्तंभसहस्रैश्चवैडूर्यमणिमंडितम् ॥ कांचनालंकृतंनानाहर्म्यप्रासादसंकुलम् ॥ १९ ॥ शारदाभ्रनिभंरुक्मकलशैःसुमनोहरम् ॥ चित्रस्फटिकसोपानंवज्रकुट्टिमशोभितम् ॥ २० ॥ मुक्ताजालगवाक्षंचपताकाध्वजभूषितम् ॥ घंटानेकनिनादाढ्यंहेमतोरणमंडितम् ॥ ॥ २१ ॥ नानाश्चर्यमयंस्वर्णकपाटशतसंकुलम् ॥ नानाद्रुमलतागुल्मैर्निष्कंटैःसुविराजितम् ॥ २२ ॥

ओंसे व्याप्त है ॥ १९ ॥ शरदऋतुके मेघतुल्य, सुवर्णके कलशोंसे मनोहर, चित्रविचित्र स्फटिकजातिकी मणियोंसे बंधीभई हैं सीढी जिनकी, वज्रमणियोंसे शोभित कोठरी जिन्होंमें ॥ २० ॥ मोतियोंकी बंदनवार पताका ध्वजा इन्होंसे शोभित, अनेक घंटा और बाजेके नादसे संयुक्त, सुवर्णके तोरणसे शोभित ॥ २१ ॥ नाना आश्चर्यमयी, सुवर्णके सैकडों केवाडोंसे युक्त, निष्कंटक नानाप्रकारके वृक्ष, लता, व गुल्म इन्होंसे सुंदर शोभित ॥ २२ ॥

इन्होंको आदिले औरभी भूषणोंसे सदा भूषित, वह विश्वकर्माने उसको आत्मयोगप्रभावसे रचा है ॥२३॥ उसमें एक दिव्य सभा है; वह सौ योजन चौंडी है सूर्यजैसा प्रकाश है, प्रकाशमान सब जग कामरूप है ॥२४॥ उसमें ज्यादा शीत नहीं है; अतिगरमी नहीं है; मनको अत्यंत हर्षकारी है; उसमें शोक नहीं है; जरा अवस्था नहीं है; भूख प्यास नहीं है ॥ २५ ॥ दुःख नहीं है; जो देवतोंके और मनुष्योंके काम हैं, वे सब उसमें स्थित हैं; सर्व रसवाला भक्ष्य, भोज्य प्रगट है ॥ २६ ॥ रसवान् और ठंढा गरम जल है; उसमें

एवमादिभिरन्यैश्चभूषणैर्भूषितंसदा ॥ आत्मयोगप्रभावैश्चनिर्मितंविश्वकर्मणा ॥ २३ ॥ तस्मिन्नस्तिसभादिव्याशतयोजनमायता ॥ अर्कप्रकाशाभ्राजिष्णुःसर्वतःकामरूपिणी ॥ २४ ॥ नातिशीतानचात्युष्णामनसोऽत्यंतहर्षिणी ॥ नशोकोनजरातस्यांक्षुत्पिपासेन चाप्रियम् ॥ २५ ॥ सर्वेकामाःस्थितायस्यांयेदिव्यायेचमानुषाः ॥ रसवच्चप्रभूतंचभक्ष्यंभोज्यंचसर्वशः ॥ २६ ॥ रसवंतिचतोयानि शीतान्युष्णानिचैवहि ॥ पुण्याःशब्दादयस्तस्यांनित्यंकामफलद्रुमाः ॥ २७ ॥ असंबाधाचसाताक्ष्यरम्याकामागमासभा ॥ दीर्घकालंतपस्तप्त्वानिर्मिताविश्वकर्मणा ॥ २८ ॥ तामुग्रतपसोयांतिसुव्रताःसत्यवादिनः ॥ शांताःसंन्यासिनःसिद्धाःपूताः पूतेनकर्मणा ॥ २९ ॥ सर्वेभास्वरदेहास्तेऽलंकृताविरजांबराः ॥ स्वकृतैःकर्मभिःपुण्यैस्तत्रातिष्ठंतिभूषिताः ॥ ३० ॥

पवित्र शब्दादिक हैं; नित्य इच्छामुजब फलवाले वृक्ष हैं ॥२७॥ हे गरुड़! इस सभामें कोईभी बाधा नहीं ऐसी रमणीक इच्छित फलप्राप्ति होनेवाली है. बहोतकाल तप करके विश्वकर्माने रची है ॥ २८ ॥ उसमें उग्र तपस्वी, सुंदर व्रतवाले, सत्यवादी, शांत, संन्यासी, सिद्ध, पवित्र कर्मवाले जाते हैं ॥ २९ ॥ वे समग्र प्रकाशमान शरीर, आभूषण पहरे, सुंदर स्वच्छ वस्त्र धारण करे, वहां अपने कियेभये पवित्रकर्मोंसे शोभित हुये स्थित रहते हैं ॥ ३० ॥

उस सभामें वो भगवान् धर्मराज अनुपम अपने शुभ आसनपर बैठे हैं. कैसा आसन है? दशयोजन चौंड़ा और सर्वरत्नोंसे जड़ित है ॥ ३१ ॥ उसपर बैठा, सत्पुरुषोंमें श्रेष्ठ, छत्रसे शोभित मस्तक है, कुंडलोंसे शोभित है, श्रीमान महामुकुटसे शोभित ॥ ३२ ॥ सर्व अलंकारोंसे संयुक्त, नीलमेघोंकीसी कांतिवाले व्यजन हैं हाथमें, ऐसी अप्सरायें जिसको पवन डालती हैं ॥ ३३ ॥ गंधर्वोंका समूह अप्सरावोंके संघ गीत वादित्र नृत्यादिकोंसे चहूंतरफ उसको सेवते हैं ॥ ३४ ॥ पाशहाथवाले मृत्युसे, बलवान् कालसे, विचित्र

तस्यांसधर्मोभगवानासनेऽनुपमेशुभे ॥ दशयोजनविस्तीर्णेसर्वरत्नैःसुमंडिते ॥ ३१ ॥ उपविष्टःसतांश्रेष्ठश्छत्रशोभितमस्तकः ॥ कुंडलालंकृतःश्रीमान्महामुकुटमंडितः ॥ ३२ ॥ सर्वालंकारसंयुक्तोनीलमेघसमप्रभः ॥ वालव्यजनहस्ताभिरप्सरोभिश्ववीजितः ॥ ३३ ॥ गंधर्वाणांसमूहाश्चसंघशश्चाप्सरोगणाः ॥ गीतवादित्रनृत्याद्यैःपरितःसेवयंतितम् ॥ ३४ ॥ मृत्युनापाशहस्तेनकालेनचबलीयसा ॥ चित्रगुप्तेनचित्रेणकृतांतेननिषेवितः ॥ ३५ ॥ पाशदंडधरैरुग्रैर्निदेशवशवर्तिभिः ॥ आत्मतुल्यबलैर्नानासुभटैःपरिवारितः ॥ ३६ ॥ अग्निष्वात्ताश्चपितरःसोमपाश्चोष्मपाश्चये ॥ स्वधावंतोबर्हिषदोमूर्तामूर्ताश्चयेखग ॥ ३७ ॥ अर्यमाद्याःपितृगणामूर्तिमंतस्तथापरे ॥ सर्वेतेमुनिभिःसार्धंधर्मराजमुपासते ॥ ३८ ॥

चित्रगुप्तसे और कालसे सेवित है ॥ ३५ ॥ पाश और दंडके धारण करनेवाले उग्र आज्ञावर्ती, आत्मतुल्य बलवाले योद्धावोंसे सेवित है ॥ ३६ ॥ अग्निष्वात्त, पितर, सोमपा, उष्मपा, स्वधावंत, बर्हिषद, हे गरुड! मूर्तिवान्, अमूर्तिवान्, ॥ ३७ ॥ और अर्यमाको आदि ले मूर्तिमंत पितृगण ये सबके सब मुनियोंसे सहित धर्मराजकी उपसना करते हैं ॥ ३८ ॥

अत्रि, वसिष्ठ, पुलह, दक्ष, ऋतु, अंगिरा, जामदग्न्य, भृगु, पुलस्त्य, अगस्त्य, नारद, ।।३९।। कहेभये ये और औरभी बहुत यमराजकी सभामें रहते हैं. नाम और कर्मोंसे इन्होंकी संख्या करनेको शक्य नहीं है ।। ४० ।। वे व्याख्या करके धर्मशास्त्रोंको यथार्थ निर्णय करते हैं. ब्रह्म परमात्माकी शिक्षासे धर्मराजकी उपासना करते हैं।। ४१।। सूर्यवंशी राजा और सोमवंशी राजा ये धर्मके ज्ञाता सभामें धर्मराजकी उपासना करते हैं ।। ४२ ।। मनु, दिलीप, मांधाता, सगर, भगीरथ, अंबरीष, अनरण्य,

अत्रिर्वसिष्ठःपुलहोदक्षःक्रतुरथांगिराः ।। जामदग्न्योभृगुश्चैवपुलस्त्यागस्त्यनारदाः ।। ३९ ।। एतेचान्येचबहवःपितृराजसभासदाः ।।
नशक्याःपरिसंख्यातुंनामभिःकर्मभिस्तथा ।।४०।।व्याख्याभिर्धर्मशास्त्राणांनिर्णेतारोयथातथम् ।। सेवंतेधर्मराजंतेशासनात्परमेष्ठिनः
।। ४१ ।। राजानःसूर्यवंशीयाःसोमवंश्यास्तथापरे ।। सभायांधर्मराजंतेधर्मज्ञाःपर्युपासते ।। ४२ ।। मनुर्दिलीपोमांधातासगरश्चभगी
रथः ।। अंबरीषोऽनरण्यश्चमुचुकुंदोनिमिःपृथुः ।। ४३ ।। ययातिर्नहुषःपूरुर्दुष्यंतश्चशिबिर्नलः ।। भरतःशंतनुःपांडुःसहस्रार्जुनएव
च ।। ४४ ।। एतेराजर्षयःपुण्याःकीर्तिमंतोबहुश्रुताः ।।इष्ट्वाऽश्वमेधैर्बहुभिर्जातोधर्मसभासदः ।।४५।। सभायांधर्मराजस्यधर्मएवप्रवर्त
ते ।। नतत्रपक्षपातोऽस्तिनानृतंनचमत्सरः।।४६।। सभ्याःसर्वेशास्त्रविदःसर्वेधर्मपरायणाः ।। तस्यांसभायांसततंवैवस्वतमुपासते।।४७।।

मुचुकुंद, निमि, पृथु ।। ४३ ।। ययाति, नहुष, पूरु, दुष्यंत, शिबि, नल, भरत, शंतनु, पांडु, सहस्रार्जुन ।। ४४ ।। ये पवित्र, बड़े कीर्तिमंत, बहुश्रुत राजऋषि बहुत अश्वमेधोंसे यजन करके धर्मराजके सभासद हुये हैं ।। ४५।। धर्मराजकी सभामें धर्मही वर्तता है; वहां पक्षपात नहीं है और झूठ नहीं है।।४६।। सब सभासद शास्त्रवेत्ता हैं, धर्मपरायण हैं, उस सभामें निरंतर वैवस्वतकी उपासना करते हैं ।। ४७ ।।

हे गरुड ! महात्मा धर्मराजकी ऐसी सभा है. उसको दक्षिणपथसे जानेवाले पापी नहीं देखते हैं ॥ ४८ ॥ धर्मराजके पुरमें जानेको चार मार्ग हैं तिन्होंमें पापियोंके जानेका जो दक्षिणमार्ग है वो तुमको पूर्व कहा है ॥ ४९ ॥ पूर्वदिशाको आदि ले, तीन मार्गों करके, जो धर्मराजके पुरमें जाते हैं वेही सुकृती पुण्यप्रभावसे उस सभामें जाते हैं, उन्होंको सुनों ॥ ५० ॥ तहां एक पूर्वमार्ग है उसमें सर्व भोग हैं. वह कल्पवृक्षोंकी छायासे आच्छादित और रत्नोंसे मंडित है ॥ ५१ ॥ विमानोंके समूहसे व्याप्त है; हंसोंकी पंक्तियोंसे

ईदृशीसासभाताक्ष्यधर्मराज्ञोमहात्मनः ॥ नतांपश्यंतियेपापादक्षिणेनपथागताः ॥ ४८ ॥ धर्मराजपुरेगंतुंचतुर्धागाभवंतिच ॥ पापिनांगमनेपूर्वंसतुतेपरिकीर्तितः ॥४९ ॥ पूर्वादिभिस्त्रिभिर्मार्गैर्येगताधर्ममंदिरे ॥ तेहिसुकृतिनःपुण्यैस्तस्यांगच्छंतितान्शृणु ॥ ५० ॥ पूर्वमार्गस्तुतत्रैकःसर्वभोगसमन्वितः ॥ पारिजाततरुच्छायाच्छादितोरत्नमंडितः ॥५१॥ विमानगणसंकीर्णोहंसावलिविराजितः ॥ विद्रुमारामसंकीर्णःपीयूषद्रवसंयुतः ॥५२॥ तेनब्रह्मर्षयोयांतिपुण्याराजर्षयोऽमलाः॥ अप्सरोगणगंधर्वविद्याधरमहोरगाः ॥ ५३ ॥ देवताराधकाश्चान्येशिवभक्तिपरायणाः ॥ ग्रीष्मेप्रपादानरतामाघेकाष्ठप्रदायिनः ॥ ५४ ॥ विश्रामयंतिवर्षासुविरक्तान्दानमानतः ॥ दुःखितस्यामृतंब्रूतेददतेह्याश्रमंतुये ॥ ५५ ॥

शोभित है. विद्रुमके वृक्षोंसे युक्त ऐसे बगीचासे संयुक्त और अमृतद्रवसंयुक्त है ॥ ५२ ॥ उस पूर्वमार्गसे ब्रह्मऋषि जाते हैं और निर्मल स्वरूपवाले पवित्र राजर्षि जाते हैं; अप्सराओंके समूह, गंधर्व, विद्याधर, उरग ॥ ५३ ॥ और देवताओंका आराधन करनेवाले, शिवकी भक्तिमें परायण, ग्रीष्मऋतुमें प्रपादान देनेवाले, माघमें काष्ठदान करनेवाले ॥ ५४ ॥ और जो वर्षाऋतुमें विरक्तोंको दान और मानसे विश्राम देनेवाले हैं और जो दुःखियोंको अमृतजैसा बोलकर सांत्वना करते हैं और जो आश्रम देते हैं ॥५५॥

जो सत्यधर्ममें आसक्त हैं, क्रोधलोभसे रहित हैं, पिता माताके जो भक्त हैं, गुरुकी शुश्रूषा करते हैं,॥ ५६ ॥ भूमिदान करनेवाले, गोदान देनेवाले, घरका दान देनेवाले, विद्यादानके देनेवाले, पुराणके वक्ता और श्रोता और वेदपुराणका पारायण करनेवाले वा सुननेवाले हैं॥५७॥ ये कहेभये और औरभी सुकृती पूर्वद्वारमेंसे प्रवेश करते हैं. वे सुशील शुद्ध बुद्धि धर्मसभामें जाते हैं ॥ ५८ ॥ दूसरा उत्तरमार्ग है वह सैकडों महारथोंसे संयुक्त है, पालकियोंसे संयुक्त, मलयागिरि चंदनसे सुगंधित, ॥ ५९ ॥ हंस

सत्यधर्मपरायेचक्रोधलोभविवर्जिताः ॥ पितृमातृषुयेभक्ताग्गुरुशुश्रूषणेरताः ॥ ५६ ॥ भूमिदागृहदागोदाविद्यादानप्रदायकाः ॥ पुराणवक्तृश्रोतारःपारायणपरायणाः ॥ ५७ ॥ एतेसुकृतिनश्चान्येपूर्वद्वारेविशंतिच ॥ यांतिधर्मसभायांतेसुशीलाःशुद्धबुद्धयः ॥ ५८ ॥ द्वितीयस्तूत्तरोमार्गोमहारथशतैर्वृतः ॥ नरयानसमायुक्तोहरिचंदनमंडितः ॥ ५९ ॥ हंससारससंकीर्णश्चक्रवाकोपशोभितः ॥ अमृतद्रवसंपूर्णस्तत्रभातिसरोवरः ॥ ६० ॥ अनेनवैदिकायांतितथाभ्यागतपूजकाः ॥ दुर्गाभान्वोश्चयेभक्तास्तीर्थस्नाताश्चपर्वसु ॥ ६१ ॥ येमृताधर्मसंग्रामेऽनशनेनमृताश्चये ॥ वाराणस्यांगोग्रहेचतीर्थतोयेमृताविधेः ॥ ६२ ॥ ब्राह्मणार्थेस्वामिकार्येतीर्थक्षेत्रेषुयेमृताः ॥ येमृतादेवविध्वंसेयोगाभ्यासेनयेमृताः ॥ ६३ ॥

सारसोंसे संयुक्त, चक्रवाकोंसे शोभित व अमृतद्रवसे संयुक्त है; तहां सरोवर शोभायमान है॥ ६० ॥ इस मार्गसे वैदिक जाते हैं. तैसे जो अभ्यागतपूजन करनेवाले, दुर्गा और सूर्यके भक्त, पर्वमें तीर्थोंपर स्नान करनेवाले, हैं ॥ ६१ ॥ जो धर्मसंग्राममें मरते हैं, जो अनशन करके मरते हैं; काशीमें, गोग्रहतीर्थमें व ब्रह्मतीर्थमें, जो मरते हैं ॥ ६२ ॥ ब्राह्मणके वास्ते, स्वामिकार्यमें, तीर्थक्षेत्रमें जो मरते हैं; जो देवतोंके विध्वंसमें मरते हैं, जो योगाभ्याससे मरते हैं ॥ ६३ ॥

जो नित्य सत्पात्रकी पूजा करते हैं, जो महादानमें आसक्त हैं वे उत्तर दरवाजासे प्रवेश करके धर्मसभामें जाते हैं ॥ ६४ ॥ तीसरा पश्चिम मार्ग है. वह रत्नोंके मंदिरोंसे शोभित है, अमृतरससे सदा पूर्ण रहै ऐसी बावड़ीसे शोभायमान है ॥ ६५ ॥ ऐरावतके कुलमें भये मदवाले हाथियोंसे व्याप्त, उच्चैःश्रवासे हुए हयरत्नोंसे संयुक्त है ॥ ६६ ॥ इस मार्गसे जो आत्मामें परायण हैं, सच्छास्त्रोंका चिंतवन करनेवाले, अनन्य विष्णुभक्त, गायत्रीमंत्रके जापक ये जाते हैं ॥ ६७ ॥ परहिंसा, परद्रव्य, परवाद, इन्होंको

सत्पात्रपूजकानित्यंमहादानरताश्चये ॥ प्रविशंत्युत्तरेद्वारेयांतिधर्मसभांचते ॥ ६४ ॥ तृतीयःपश्चिमोमार्गोरत्नमंदिरमंडितः ॥
सुधारससदापूर्णदीर्घिकाभिर्विराजितः ॥ ६५ ॥ ऐरावतकुलोद्भूतमत्तमातंगसंकुलः ॥ उच्चैःश्रवःसमुत्पन्नहयरत्नसमन्वितः ॥
॥ ६६ ॥ एतेनात्मपरायांतिसच्छास्त्रपरिचिंतकाः ॥ अनन्यविष्णुभक्ताश्चगायत्रीमंत्रजापकाः ॥ ६७ ॥ परहिंसापरद्रव्यपरवाद
पराङ्मुखाः ॥ स्वदारनिरताःसन्तःसाग्निकावेदपाठकाः॥६८॥ब्रह्मचर्यव्रतधरावानप्रस्थास्तपस्विनः॥श्रीपादसंन्यासपराःसमलोष्टा
श्मकाचनाः ॥ ६९ ॥ ज्ञानवैराग्यसंपन्नाःसर्वभूतहितेरताः ॥ शिवविष्णुव्रतकराःकर्मब्रह्मसमर्पकाः ॥ ७० ॥ ऋणैस्त्रिभिर्विनि
र्मुक्ताःपंचयज्ञरताःसदा ॥ पितॄणांश्राद्धदातारः कालेसंध्यामुपासकाः ॥ ७१ ॥

कभी नहीं करते हैं; स्वस्त्रीसे भोग करनेवाले, महात्मा, साग्निक, वेदपाठी, ॥ ६८ ॥ ब्रह्मचर्यव्रतधारी और वानप्रस्थ, तपस्वी, श्रीपाद, संन्यासमें परायण, जिन्होंके लोष्ट (मट्टीका डेला) पत्थर व सुवर्ण ये तुल्य हैं ॥ ६९ ॥ जो ज्ञानवैराग्यसे संयुक्त हैं, सर्वभूतोंका उपकार करनेवाले, शिवविष्णुके व्रत करनेवाले, कर्मोंको ब्रह्मके प्रति अर्पण करनेवाले ॥ ७० ॥ तीनों ऋणोंसे छूटे, सदा पंचमहायज्ञोंमें आसक्त, पित्रीश्वरोंके श्राद्धदाता, त्रिकाल संध्योपासन करनेवाले, ॥ ७१ ॥

नीचसंगसे रहित, सत्संगतिमें प्रायण ये कहेभये अप्सरादिकोंके समूहोंसे संयुक्त, श्रेष्ठ विमानोंपर स्थित हुये, ॥ ७२ ॥ अमृत पान करते धर्मराजके मंदिरमें जाते हैं. पश्चिमद्वारसे प्रवेश करते हैं और धर्मराजकी सभामें जाते हैं ॥ ७३ ॥ यमराज उन आयेभयोंको देख, 'स्वागतं' ऐसे वारंवार कहते हैं और उठकर, उन्होंके सन्मुख जाते हैं ॥ ७४ ॥ तब चतुर्भुज होकर शंख, चक्र, गदा, खड्गको धारण कर, पुण्यकर्म करनेवालेसे मित्रके जैसे स्नेह करते हैं ॥ ७५ ॥ उनको सिंहासन देते हैं, नमस्कार करते हैं फिर पाद्य, अर्घ्यकरके

नीचसंगविनिर्मुक्ताःसत्संगतिपरायणाः ॥ एतेऽप्सरोगणैर्युक्ताविमानवरसंस्थिताः ॥ ७२ ॥ सुधापानंप्रकुर्वंतोयांतितेधर्ममंदिरम् ॥
विशंतिपश्चिमद्वारेयांतिधर्मसभांतरे ॥ ७३ ॥ यमस्तानागतान्दृष्ट्वास्वागतंवदतेमुहुः ॥ समुत्थानंचकुरुतेतेषांगच्छतिसंमुखम् ॥ ७४ ॥
तदाचतुर्भुजोभूत्वाशंखचक्रगदासिभृत् ॥ पुण्यकर्मरतानांचस्नेहान्मित्रवदाचरेत् ॥ ७५ ॥ सिंहासनंचददतेनमस्कारंकरोतिच ॥
पादार्घंकुरुतेपश्चात्पूजतेचंदनादिभिः ॥ ७६ ॥ नमस्कुर्वन्तिभोःसभ्याज्ञानिनंपरमादरात् ॥ एषमेमंडलंभित्त्वाब्रह्मलोकंप्रयास्यति
॥ ७७ ॥ भोभोबुद्धिमतांश्रेष्ठानरकक्लेशभीरवः ॥ भवद्भिःसाधितंपुण्यैर्देवत्वंसुखदायकम् ॥ ७८ ॥ मानुष्यंदुर्लभंप्राप्यनित्यंयस्तु
नसाधयेत् ॥ सयातिनरकंघोरंकोऽन्यस्तस्मादचेतनः ॥ ७९ ॥

चंदनादिकोंसे पूजते हैं ॥ ७६ ॥ और दूसरोंसेभी कहते हैं कि-हे सभासदो ! इस ज्ञानीको परमआदरसे नमस्कार करो. यह हमारा मंडल भेदन कर, ब्रह्मलोकमें जायगा ॥ ७७ ॥ फिर आयेभये पुण्यवानोंको कहता है—हे बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ ! नरकके क्लेशको डरके पुण्यकर्मोंसे तुमने सुख देनेवाले देवत्वको सिद्ध किया है ॥ ७८ ॥ जो दुर्लभ मनुष्य शरीर प्राप्त होकर, नित्य साधना नहीं करता है वो घोरनरकमें जाता है. उससे जड़ (मूर्ख) और कौन है ? ॥ ७९ ॥

अस्थिर शरीरसे, अस्थिर धनादिकोंसे, स्थिर धर्मका जो संचय करता है वो एक बुद्धिमान् पुरुष है ॥ ८० ॥ तिसीसे सर्वयत्नसे धनसंचय करना. उससे सर्वभोगसंयुक्त पुण्यवान् स्थानमें जाना ॥ ८१ ॥ ऐसे धर्मराजका धार्मिक वचन सुनकर, उस धर्मराजको व सभाको नमस्कार करके, देवतोंसे पूजेहुये, मुनीश्वरोंसे स्तुतिको प्राप्त भये ॥ ८२ ॥ विमानोंके समूहसे युक्त परमपदको जाते हैं. कितनेक धर्मसभामें परम आदरसे स्थित रहते हैं ॥ ८३ ॥ वहां कल्पपर्यंत वास कर देवतोंके भोग भोगकर, पुण्यशेषसे पुण्यसे

अस्थिरेणशरीरेणयोऽस्थिरैश्चधनादिभिः ॥ संचिनोतिस्थिरंधर्मंसएकोबुद्धिमान्नरः ॥ ८० ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेनकर्तव्योधर्मसंचयः ॥ गच्छध्वंपुण्यवत्स्थानंसर्वभोगसमन्वितम् ॥ ८१ ॥ इतिधर्मवचःश्रुत्वातंप्रणम्यसभांचताम् ॥ अमरैःपूज्यमानास्तेस्तूयमानामुनीश्वरैः ॥ ८२ ॥ विमानगणसंकीर्णाःप्रयांतिपरमंपदम् ॥ केचिद्धर्मसभायांहितिष्ठंतिपरमादरात् ॥ ८३ ॥ उषित्वातत्रकल्पांतंभुक्त्वाभोगानमानुषान् ॥ प्राप्नोतिपुण्यशेषेणमानुष्यंपुण्यदर्शनम् ॥ ८४ ॥ महाधनीचसर्वज्ञःसर्वशास्त्रविशारदः ॥ पुनःस्वात्मविचारेणततोयातिपरांगतिम् ॥ ८५ ॥ एतत्तेकथितंसर्वंत्वयापृष्टंयमालयम् ॥ इदंशृण्वन्नरोभक्त्याधर्मराजसभांव्रजेत् ॥ ८६ ॥ इतिश्रीगरुडपुराणेसारोद्धारेधर्मराजनिरूपणोनामचतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ ॥ छ ॥ ॥ छ ॥ ॥ छ ॥

प्राप्त होनेवाला ऐसा मनुष्यजन्म प्राप्त होता है ॥ ८४ ॥ वह मनुष्यजन्ममें महाधनी, सर्वज्ञाता, सर्वशास्त्रमें निपुण ऐसा होता है. फिर आत्मविचार करके, परमगतिको प्राप्त होता है ॥ ८५ ॥ हे गरुड ! यह तुमको पूँछाहुवा सर्व यमका स्थान वर्णन किया है. इसको भक्तिसे सुनताहुवा पुरुष धर्मराजकी सभामें जाता है ॥ ८६ ॥ इति श्रीगरुडपुराणे सारोद्धारे ज्ञानबोधिनीभाषाटीकायां धर्मराजनगरनिरूपणो नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

अब गरुड़जी कहते हैं—धर्मात्मा स्वर्ग भोगकर, निर्मल कुलमें जन्मता है. इससे उसकी उत्पत्ति माताके पेटमें कैसे होती है, सो कहो ॥ १ ॥ जैसें सुकृती पुरुष इस मनुष्यशरीरमें विचार करता है तैसे हम सुननेकी इच्छा करते हैं. करुणानिधे ! हमारेको कहो ॥ २ ॥ अब भगवान् कहते हैं—हे गरुड ! तुमने श्रेष्ठ बात पूछी है. परमगुप्त तुमको कहता. हूं जिसके अनुभवज्ञानमात्रसे सर्वज्ञत्वपना प्रकट होता है ॥ ३ ॥ अब शरीरका पारमार्थिक स्वरूप कहता हूं. कैसा स्वरूप है ? ब्रह्मांडके गुणोंसे संयुक्त योगिराजोंके धारणोंका स्थान ॥ ४ ॥ जिस पारमार्थिक स्वरूपमें योगिराज षट्चक्र चिंतन जैसे करते हैं. और ब्रह्मरंध्रमें चिदानंदरूपका ध्यान जैसे करते हैं सो सुनो ॥ ५ ॥

गरुडउवाच ॥ ॥ धर्मात्मास्वर्गतिंभुक्त्वाजायतेविमलेकुले ॥ अतस्तस्यसमुत्पत्तिंजननीजठरेवद ॥ १ ॥ यथाविचारंकुरुतेदेहेऽस्मिन्सुकृतीजनः ॥ तथाऽहंश्रोतुमिच्छामिवदमेकरुणानिधे ॥ २ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ साधुपृष्टंत्वयाताक्ष्र्यपरंगोप्यंवदामिते ॥ यस्यविज्ञानमात्रेणसर्वज्ञत्वंप्रजायते ॥ ३ ॥ वक्ष्यामिचशरीरस्यस्वरूपंपारमार्थिकम् ॥ ब्रह्मांडगुणसंपन्नंयोगिनांधारणास्पदम् ॥ ४ ॥ षट्चक्रचिंतनंयस्मिन्यथाकुर्वंतियोगिनः ॥ ब्रह्मरंध्रेचिदानंदरूपध्यानंतथाशृणु ॥ ५ ॥ शुचीनांश्रीमतांगेहेजायतेसुकृतीयथा ॥ तथाविधानंनियमंतत्पित्रोःकथयामिते ॥ ६ ॥ ऋतुकालेतुनारीणांत्यजेद्दिनचतुष्टयम् ॥ तावन्नालोकयेद्वक्त्रंपापंवपुषिसंभवेत् ॥ ७ ॥ स्नात्वासचैलंसानारीचतुर्थेऽहनिशुद्ध्यति ॥ सप्ताहात्पितृदेवानांभवेद्योग्याव्रतार्चने ॥ ८ ॥

पवित्र श्रीमंतोंके घरमें जैसे सुकृती जन्मता है तैसे विधि और नियम उनके माता पिताके तुमको कहता हूं ॥ ६ ॥ स्त्रियोंके ऋतुकालमें चार दिन त्यागने. उनका चार दिनतक मुख नहीं देखना. कारण शरीरमें पाप रहता है ॥ ७ ॥ वह स्त्री वस्त्रोंसहित स्नान करके चौथे दिन शुद्ध होती है और पितर देवताओंके कार्यमें तथा व्रत करनेमें और पूजा करनेमें योग्य सात दिनसे होती है ॥ ८ ॥

सात दिवसके मध्य जो गर्भ होता है वोह मलिनाशय होता है और आठ दिवसके अंदरही अवश्य पुत्रादिक होते हैं तथापि सुकृती आठ दिनके अंदर नहीं होता है ॥ ९ ॥ कारण सात दिवसके अंदरमें जो गर्भ होता है वो मलिनाशय होता है. इसीसे युग्मतिथियोंमें पुत्र जन्मते हैं और विषम तिथियोंमें कन्या होती है. तिसीसे प्रथमके सात दिवस त्यागकर, पीछे युग्मतिथियोंमें स्त्रीसंग करना ॥ १० ॥ स्त्रियोंके सोला रात्री सामान्यतासे ऋतुकी कही हैं. जो चौदहवीं रात्री है तहां जो गर्भ रहता है वो गुणभाग्यका निधि धर्मात्मा पुत्र जन्मता है ॥ ११ ॥ वोह चौदहवीं रात्रि प्राकृत जीवोंको कभी नहीं प्राप्त होती है उसमें दैवी जन्मता है ॥ १२ ॥ पांचवें दिन स्त्रियोंको मधुर भोजन करना

सप्ताहमध्येयोगर्भःसभवेन्मलिनाशयः ॥ प्रायशःसंभवंत्यत्रपुत्रास्त्वष्टाहमध्यतः ॥९॥ युग्मासुपुत्राजायंतेस्त्रियोऽयुग्मासुरात्रिषु ॥ पूर्वं सप्तकमुत्सृज्यतस्माद्युग्मासुसंविशेत् ॥ १० ॥ षोडशर्तुनिशाःस्त्रीणांसामान्याःसमुदाहृताः ॥ यावैचतुर्दशीरात्रिर्गर्भस्तिष्ठतितत्रवै ॥ ॥ ११ ॥ गुणभाग्यनिधिःपुत्रस्तदाजायेतधार्मिकः ॥ सानिशाप्राकृतैर्जीवैर्नलभ्येतकदाचन ॥ १२ ॥ पंचमेऽहनिनारीणांकार्यंमधुरभोजनम् ॥ कटुक्षारंचतीक्ष्णंचत्याज्यमुष्णंचदूरतः ॥ १३ ॥ तत्क्षेत्रमोषधीपात्रंबीजंचाप्यमृतायितम् ॥ तस्मिन्नुप्त्वानरःस्वामी सम्यक्फलमवाप्नुयात् ॥ १४ ॥ तांबूलपुष्पश्रीखंडैःसंयुक्तःशुचिवस्त्रभृत् ॥ धर्ममादायमनसिसुतल्पंसंविशेत्पुमान् ॥ १५ ॥

कटु, क्षार, तीक्ष्ण और गरम ये दूरसे त्यागने ॥ १३ ॥ वोह क्षेत्र तो औषधका पात्र है. बीजभी अमृततुल्य हैं. जैसे खेत यवादि अन्नको उत्पन्न करता उसमें कांटा, गुल्म, वगैरे होय उनको दूर करनेसे, जल सिंचनेसे श्रेष्ठ अन्न होता है तैसे पुत्रोत्पत्तिका स्थान स्त्रियोंका गर्भरूप क्षेत्र है उसमें कांटा गुल्मरूपी कटुआदि भोजन त्याग कर, वीर्यसेचन कर, पिता श्रेष्ठ धर्मात्मा पुत्रको प्राप्त होता है ॥ १४ ॥ तांबूल, पुष्प, चंदन इन्होंसे संयुक्त होकर, श्रेष्ठवस्त्रको धारणकर, धर्म ग्रहण कर, सुंदर शय्यापर प्राप्त होवे ॥ १५ ॥

संभोगसमयमें जैसी मनुष्यके चित्तकी विकल्पना हो वैसे स्वभावका प्रगटनेवाला जीव कुक्षिमें प्राप्त होता है ॥ १६ ॥ बीजरूप चैतन्यता नित्य कुक्षिगत वीर्यमें रहतीहै. जब काम चित्त वीर्य एकत्र हो ॥ १७ ॥ तब मनुष्य स्त्रीके गर्भाशयमें द्राव अर्थात् वीर्य सींचताहै उस वक्त शुक्र और रुधिरके संयोगसे पिंडोत्पत्ति होती है ॥ १८ ॥ सुकृती गर्भमें प्राप्त हुवा परम आनंदका देनेवाला होताहै. उसके समग्र पुंसवनादिक संस्कार होती है ॥ १९ ॥ पुण्यात्मा पुरुष उच्च राशिपर ग्रह हों तब जन्मता है. उस सुकृतीके जन्मनेके वक्त ब्राह्मणोंको बहुत धन मिलता है ॥२०॥ वोह विद्या नम्रतासे संयुक्त हुवा पिताके घरमें वृद्धिको प्राप्त होताहै और सत्पुरुषोंके संगसे सर्व वेदोंमें निपुण होताहै

निषेकसमयेयादृङ्नरचित्तविकल्पना ॥ तादृक्स्वभावसंभूतिर्जंतुर्विशतिकुक्षिगः ॥ १६ ॥ चैतन्यंबीजभूतंहिनित्यंशुक्रेऽप्यवस्थितम् ॥ कामश्चित्तंचशुक्रंचयदाह्येकत्वमाप्नुयात् ॥ १७ ॥ तदाद्रावमवाप्नोतियोषिद्गर्भाशयेनरः ॥ शुक्रशोणितसंयोगात्पिंडोत्पत्तिः प्रजायते ॥ १८ ॥ परमानंददःपुत्रोभवेद्गर्भगतःकृती ॥ भवंतितस्यनिखिलाःक्रियाःपुंसवनादिकाः ॥ १९ ॥ जन्मप्राप्नोतिपुण्यात्मा ग्रहेषूच्चगतेषुच ॥ तज्जन्मसमयेविप्राःप्राप्नुवंतिधनंबहु ॥ २० ॥ विद्याविनयसंपन्नोवर्धतेपितृवेश्मनि ॥ सतांसंगेनसभवेत्सर्वागमविशारदः ॥ २१ ॥ दिव्यांगनादिभोक्तास्यात्तारुण्येदानवान्धनी ॥ पूर्वकृततपस्तीर्थमहापुण्यफलोदयात् ॥ २२ ॥ ततश्चयततेनित्यमात्मानात्मविचारणे ॥ अध्यारोपापवादाभ्यांकुरुतेब्रह्मचिंतनम् ॥ २३ ॥

॥ २१ ॥ पूर्व किये हुए तप तीर्थ महापुण्य इन्होंके उदयसे तरुण अवस्थामें दिव्य स्त्रीआदि भोगोंको भोक्ता हो दानी और धनी होता है ॥ २२ ॥ पीछे वृद्धावस्थामें नित्य आत्मा और अनात्माके विचारमें मनसे यत्न करताहै. अध्यारोप अर्थात् नहीं सर्प ऐसी जेवडीमें सर्पको मानके भ्रम करना. वस्तुमें अवस्तुका आरोपण यह अध्यारोप. अपवाद अर्थात् अवस्तुमें वस्तुका भ्रम; यथा असत्य नाशवान संसारको सत्य समझना. इन अध्यारोप और अपवादसे पदार्थको जानकर “ सर्वं खल्विदं ब्रह्म ” “ नेह नानास्ति किंचन ” इत्यादिश्रुतियोंमें कहे विचारसे वह ब्रह्मचिंतन करताहै ॥ २३ ॥

आत्मानामसे ईश्वर, अनात्मानामसे देहआदि पदार्थ; तहां अनात्मा पृथ्वी आदिमें ब्रह्मका अन्वय है और पीछे सबसे जुदा है ऐसा आत्मरूप, ब्रह्मके ज्ञानके वास्ते पृथ्वीआदि अनात्म पदार्थोंका गुण मैं तुमको कहताहूं ॥ २४ ॥ अब अनात्म अर्थात् देहादिकका विचार कहते हैं. पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, ये पांच महाभूत हैं. इन पंचभूतोंसे उत्पन्न हुवा शरीर है ॥ २५ ॥ हे गरुड ! त्वचा, हाड़, नसैं, रोम, मांस ये पांच पृथ्वीके गुण मैंने तुमको कहे ॥ २६ ॥ लाला, मूत्र, वीर्य, मज्जा, पंचम रक्त ये पांच जलके गुण कहे. अब तेजकेभी सुनो ॥ २७ ॥ हे गरुड ! क्षुधा, प्यास, आलस्य, नींद, और कांति ये पांच गुण तेजके सब जगह योगिराजोंने कहे हैं ॥ २८ ॥ अंगोंका

अस्यासंगावबोधायब्रह्मणोन्वयकारिणः॥क्षित्याद्यनात्मवर्गस्यगुणांस्तेकथयाम्यहम्॥२४॥क्षितिर्वारिहविर्भोक्तावायुराकाशएवच ॥
स्थूलभूताइमेप्रोक्ताःपिंडोऽयंपांचभौतिकः॥२५॥त्वगस्थिनाड्योरोमाणिमांसंचैवखगेश्वर॥एतेपंचगुणाभूमेर्मयातेपरिकीर्तिताः२६॥
लालामूत्रंतथाशुक्रंमज्जारक्तंचपंचमम् ॥ अपांपंचगुणाःप्रोक्तास्तेजसोऽपिनिशामय॥२७॥क्षुधातृषातथालस्यंनिद्राकांतिस्तथैवच ॥
तेजःपंचगुणंताक्ष्र्यप्रोक्तंसर्वत्रयोगिभिः ॥२८॥ आकुंचनंधावनंचलंघनंचप्रसारणम्॥चेष्टितंचेतिपंचैवगुणावायोःप्रकीर्तिताः॥२९॥
घोषश्चिंताचशून्यत्वंमोहश्चिंताचसंशयः॥आकाशस्यगुणाःपंचज्ञातव्यास्तेप्रयत्नतः॥३०॥मनोबुद्धिरहंकारश्चित्तंचेतिचतुष्टयम्॥अंतःकरणमुद्दिष्टंपूर्वकर्माधिवासितम्॥३१॥ श्रोत्रंत्वक्चक्षुषीजिह्वाघ्राणंज्ञानेंद्रियाणिच॥वाक्पाणिपादपायूपस्थानिकर्मेंद्रियाणिच॥३२॥

संकोचन १, भागना २, लंघन ३, अंगोंका परसना ४, चेष्टा करनी ५ ये पांच वायुके गुण कहे हैं ॥ २९ ॥ शब्द सुनना, चिंता, शून्यता, मोह, चित्तमें संदेह ये पांच आकाशके गुण हैं; सो यत्नसे जानने ॥ ३० ॥ मन, बुद्धि, अहंकार, चित्त, इन चारों संबंधी शुभाशुभ पूर्व कर्मोंकी वासनायुक्त अंतःकरण कहा है ॥ ३१ ॥ श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, जिह्वा, और नासिका ये पंच ज्ञानइंद्रियां हैं. वाणी, हाथ, पैर, गुदा और लिंग ये पांच कर्मइंद्रियां हैं ॥ ३२ ॥

दिशा, वायु, सूर्य, प्रचेता, अश्विनीकुमार, अग्नि, इंद्र, उपेंद्र, मित्र, दक्ष ये ज्ञान और कर्म इंद्रियोंके देवता कहे हैं ॥ ३३ ॥ इडा, पिंगला, सुषुम्णा, गांधारी, गजजिव्हा, पूषा, यशस्विनी ॥ ३४ ॥ अलंबुषा, कुहू और शंखिनी ये शरीरमें स्थित मुख्य दश नाडियां हैं॥ ३५ ॥ प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, और धनंजय ये दश शरीरमें प्राण हैं ॥ ३६ ॥ हृदयमें प्राण रहताहै, गुदामें अपान रहताहै, नाभिमें समान रहताहै, उदान कंठमें रहताहै, व्यान सर्वशरीरमें रहताहै ॥ ३७ ॥

दिग्वातार्कप्रचेतोश्विवह्नींद्रोपेंद्रमित्रकाः ॥ ज्ञानकर्मेंद्रियाणांचदेवताःपरिकीर्तिताः ॥ ३३ ॥ इडाचपिंगलाचैवसुषुम्णाख्यातृतीयका ॥ गांधारीगजजिह्वाचपूषाचैवयशस्विनी ॥ ३४ ॥ अलंबुषाकुहूश्चापिशंखिनीदशमीतथा ॥ पिंडमध्यस्थिताह्येताःप्रधानदशनाडिकाः ॥ ३५ ॥ प्राणोऽपानःसमानाख्यउदानोव्यानएवच ॥ नागःकूर्मश्चकृकलोदेवदत्तोधनंजयः ॥ ३६ ॥ हृदिप्राणोगुदेऽपानःसमानोनाभिमंडले ॥ उदानःकंठदेशेस्याद्व्यानःसर्वशरीरगः ॥ ३७ ॥ उद्गारेनागआख्यातःकूर्मउन्मीलनेस्मृतः ॥ कृकलःक्षुत्करोज्ञेयोदेवदत्तोविजंभणे ॥ ३८ ॥ नजहातिमृतंवापिसर्वव्यापीधनंजयः ॥ कवलैर्भुक्तमन्नंहिपुष्टिदंसर्वदेहिनाम् ॥ ३९ ॥ नयतेव्यानकोवायुःसारांशंसर्वनाडिषु ॥ आहारोभुक्तमात्रोहिवायुनाक्रियतेद्विधा ॥ ४० ॥

डकारमें नाग नाम प्राण कहा है, नेत्र उघाड़नेमें कूर्म प्राण कहा है, क्षुधा करनेमें कृकल प्राण कहा है, जँभाईमें देवदत्त नाम प्राण कहा है ॥ ३८ ॥ और सर्व शरीरव्यापी धनंजय मरेहुयेकोभी नहीं त्यागताहै. वोह ग्रासोंसे खायाहुवा अन्न सर्वशरीरको पुष्टि देताहै ॥ ३९ ॥ व्यान नाम वायु सर्वनाडियोंमें अन्नके सारांशको लेजाताहै. खायेहुये आहारके वायुसे दो प्रकार किये जातेहैं ॥ ४० ॥

गुदामें प्रवेश होकर, जलको जुदा और अन्नको जुदा करके, अग्निके ऊपर जल करके, जलके ऊपर अन्न करके, ॥ ४१ ॥ अग्निके नीचे आप प्राण स्थिर होकर शनैः शनैः अग्निको तेज करता है; वायुसे धमाया भया अग्नि मैल जुदा और रस जुदा करता है ॥ ४२ ॥ व्यान वायु चारोंतरफ रसको फैलाता है; बारह दरवाजोंसे जुदा हुवा मल बाहिर निकालता है ॥ ४३ ॥ कान, नेत्र, नासिका, जीभ, दांत, नाभि, नख, गुदा, गुह्य, शिरा, शरीर, और रोम ये मलके स्थान कहे हैं ॥ ४४ ॥ ऐसे संपूर्ण वायु आत्मा नाम ईश्वरकी सत्ताको प्राप्त होकर, अपने अपने कामोंमें प्रवृत्त होरहे हैं. जैसे सूर्य मनुष्योंको कर्ममें प्रवृत्त कर, आप साक्षित्वसे स्थित रहते हैं; तैसे ईश्वर भी

संप्रविश्यगुदेसम्यक्पृथगन्नंपृथग्जलम् ॥ ऊर्ध्वमग्नेर्जलंकृत्वाकृत्वान्नंचजलोपरि ॥ ४१ ॥ अग्नेश्चाधःस्वयंप्राणःस्थित्वाऽग्निंधमतेशनैः ॥ वायुनाधमायमानोऽग्निःपृथक्किट्टंपृथग्रसम् ॥ ४२ ॥ कुरुतेव्यानकोवायुर्विष्वक्संप्रापयेद्रसम् ॥ द्वारैर्द्वादशभिर्भिन्नंकिट्टंदेहाद्बहिः स्रवेत् ॥ ४३ ॥ कर्णाक्षिनासिकाजिह्वादंतानाभिर्नखागुदम् ॥ गुह्यंशिरावपुर्लोममलस्थानानिचक्षते ॥ ४४ ॥ एवंसर्वेप्रवर्ततेस्व स्वकर्मणिवायवः ॥ उपलभ्यात्मनःसत्तांसूर्यालोकंयथाजनाः ॥ ४५ ॥ इदानींनरदेहस्यशृणुरूपद्वयंखग ॥ व्यावहारिकमेकंचद्वि तीयंपारमार्थिकम् ॥ ४६ ॥ तिस्रःकोट्योऽर्धकोटीचरोमाणिव्यावहारिके ॥ सप्तलक्षाणिकेशाःस्युर्नखाःप्रोक्तास्तुविंशतिः ॥ ४७ ॥ द्वात्रिंशद्दशनाःप्रोक्ताःसामान्याद्विनतासुत ॥ मांसंपलसहस्रंतुरक्तंपलशतंस्मृतम् ॥ ४८ ॥

प्राणोंको अपने अपने कर्ममें प्रवृत्त करके, साक्षीरूपसे स्थित है ॥ ४५ ॥ हे गरुड़ ! अब मनुष्यदेहके दो रूप सुनो. एक तो व्यावहारिक दूसरा पारमार्थिक ॥ ४६ ॥ साढ़ेतीन करोड़ व्यावहारिक शरीरके रोवां हैं; सात लाख केश हैं; नख बीश कहे हैं ॥ ४७ ॥ बत्तीस दांत कहे हैं. हे गरुड़ ! ये सामान्यतासे कहे हैं और हजार पल (४००० तोला) मांस कहा है; सौ पल (४०० तोला) लोहू कहा है ॥ ४८ ॥

दश पल मेदा कही है; सत्तर पल त्वचा कही है; बारह पल मज्जा कही है; तीन पल महारक्त कहा है; ॥ ४९ ॥ दो कुडव शुक्र कहा है; एक कुडव रक्त कहा है. तीनसौ साठ शरीरमें अस्थि कहे हैं ॥ ५० ॥ स्थूल और सूक्ष्म ऐसी कोटिप्रमाण नाड़ी कही हैं. पचास पल पित्त है और पचीस पल कफ है ॥ ५१ ॥ रात दिवस होनेवाला मल मूत्र अप्रमाणिक है. इन कहेभये गुणोंसहित व्यावहारिक शरीर है ॥ ५२ ॥ दूसरे पारमार्थिक शरीरमें चौदा भुवन, पर्वत, द्वीप, समुद्र,

पलानिदशमेदस्तुत्वक्पलानिचसप्ततिः ॥ पलद्वादशकंमज्जामहारक्तंपलत्रयम् ॥ ४९ ॥ शुक्रंद्विकुडवंज्ञेयंकुडवंशोणितंस्मृतम् ॥ षष्ट्युत्तरंचत्रिशतमस्थ्नांदेहेप्रकीर्तितम् ॥ ५० ॥ नाड्यःस्थूलाश्चसूक्ष्माश्चकोटिशःपरिकीर्तिताः ॥ पित्तंपलानिपंचाशत्तदर्धंश्लेष्मणस्तथा ॥ ५१ ॥ सततंजायमानंतुविण्मूत्रंचाप्रमाणतः ॥ एतद्गुणसमायुक्तंशरीरंव्यावहारिकम् ॥ ५२ ॥ भुवनानिचसर्वाणि पर्वतद्वीपसागराः ॥ आदित्याद्याग्रहाःसंतिशरीरेपारमार्थिके ॥ ५३ ॥ पारमार्थिकदेहेहिषट्चक्राणिभवंतिच ॥ ब्रह्माण्डेयेगुणाः प्रोक्तास्तेऽप्यस्मिन्नेवसंस्थिताः ॥ ५४ ॥ तानहंतेप्रवक्ष्यामियोगिनांधारणास्पदान् ॥ येषांभावनयाजंतुर्भवेद्वैराजरूपभाक् ॥ ५५ ॥ पादाधस्तात्तलंज्ञेयंपादोर्ध्वंवितलंतथा ॥ जानुनोःसुतलंविद्धिसक्थिदेशेमहातलम् ॥ ५६ ॥

सूर्यादि ग्रह ये हैं ॥ ५३ ॥ पारमार्थिक शरीरमें षट् चक्र हैं. जो ब्रह्मांडमें गुण कहे हैं वे इसीमें स्थित हैं ॥ ५४ ॥ उन्होंको मैं तुमको कहता हूं. कैसे वे चक्र हैं? योगीजनोंकी धारणाका स्थान, जिन्होंकी भावनासे जीव विराट्रूपको प्राप्त होता है ॥ ५५ ॥ पादके नीचे तौ तललोक है; पादके ऊपर वितल है; गोड़ोंमें सुतल लोक है; सक्थिदेशमें महातल है ॥ ५६ ॥

जांघोंमें तलातल है; गुदामें रसातल है; कटिमें पाताल है; ऐसे सप्त लोक कहे हैं ॥ ५७ ॥ नाभिके मध्यमें भूर्लोक है; नाभिके ऊपर भुवर्लोक है, हृदयमें स्वर्गलोक है; तैसेही कंठमें महर्लोक है ॥ ५८ ॥ मुखारविंदमें जनलोक है; ललाटमें तपलोक है; ब्रह्मरंध्र अर्थात् तालुवामें सत्यलोक है. ऐसे चतुर्दश भुवन हैं ॥ ५९ ॥ हृदय और पीठके कमलमें मेरुपर्वत स्थित है; नीचके कोणमें मंदराचल है; दक्षिणकोणमें कैलास स्थित है; वामकोणमें हिमाचल है ॥ ६० ॥ ऊर्ध्वरेखामें निषध पर्वत है; दक्षिणरेखामें गंधमादन है; वामरेखामें

तलातलंसक्थिमूलेगुह्यदेशेरसातलम् ॥ पातालंकटिसंस्थंचसप्तलोकाःप्रकीर्तिताः ॥ ५७ ॥ भूर्लोकंनाभिमध्येतुभुवर्लोकंतदूर्ध्वके ॥
स्वर्लोकंहृदयेविद्यात्कंठदेशेमहस्तथा ॥ ५८ ॥ जनलोकंवक्त्रदेशेतपोलोकंललाटके ॥ सत्यलोकंब्रह्मरंध्रेभुवनानिचतुर्दश ॥ ५९ ॥
त्रिकोणेसंस्थितोमेरुरधःकोणेचमंदरः ॥ दक्षकोणेचकैलासोवामकोणेहिमाचलः ॥ ६० ॥ निषधश्चोर्ध्वरेखायांदक्षायांगंधमादनः ॥
रमणोवामरेखायांसप्तैतेकुलपर्वताः ॥ ६१ ॥ अस्थिस्थानेभवेज्जंबुःशाकोमज्जासुसंस्थितः ॥ कुशद्वीपःस्थितोमांसेक्रौंचद्वीपःशिरासुच ॥ ६२ ॥ त्वचायांशाल्मलीद्वीपोगोमेदोरोमसंचये ॥ नखस्थंपुष्करंविद्यात्सागरास्तदनंतरम् ॥ ६३ ॥ क्षारोदोहिभवेन्मूत्रे क्षीरेक्षीरोदसागरः ॥ सुरोदधिःश्लेष्मसंस्थो मज्जायांघृतसागरः ॥ ६४ ॥

रमण है, ऐसे ये सप्त कुलपर्वत हैं ॥ ६१ ॥ अस्थिस्थानमें जंबुद्वीप स्थित है; शाकद्वीप मज्जा अर्थात् चर्बीमें स्थित है; मांसमें कुशद्वीप है, नाड़ियोंमें क्रौंचद्वीप है, ॥ ६२ ॥ त्वचामें शाल्मलिद्वीप है; रोमसमूहमें गोमेदद्वीप है, नखोंमें पुष्करद्वीप है, उसके अगाड़ी समुद्र है, ॥ ६३ ॥ और मूत्रमें क्षारोद समुद्र है, सुरोदधि कफमें स्थित है, क्षीर (दुग्धाशय) में क्षीरोद समुद्र रहता है; चर्बीमें घृतसमुद्र स्थित है ॥ ६४ ॥

रसोदधि रसमें स्थित है; रक्तमें दधिसमुद्र स्थित है; स्वादूदसमुद्र लंबिका अर्थात् कंठमध्यमें स्थित रहता है ॥ ६५ ॥ ऐसे हे गरुड़ ! सप्त महासमुद्रोंकी स्थिति जाननी. सूर्य नादचक्रमें स्थित है; चंद्रमा बिंदुचक्रमें स्थित है; नेत्रोंमें मंगल जानना, हृदयमें बुध जानना ॥ ६६ ॥ विष्णुस्थान अर्थात् नाभ्यंतरगत मणिपूरचक्रमें बृहस्पतिको जानना, वीर्यमें शुक्र स्थित है, नाभिस्थानमें शनैश्चर है, मुखमें राहु स्थित है ॥ ६७ ॥ हृदयमें कंठपर्यंत वायुस्थानमें केतु स्थित है. ऐसे शरीरमें ग्रहमंडल स्थित हैं. ऐसे सब स्वरूपकरके, अपने शरीरको चिंतवन करना ॥ ६८ ॥ सदा प्रभातसमयमें पद्मासन बांधकर, स्थित हुवा षट्चक्रोंका चिंतवन

रसोदधिंरसेविद्याच्छोणितेदंधिसागरः ॥ स्वादूदोलंबिकास्थानेजानीयाद्विनतासुत ॥ ६५ ॥ नादचक्रेस्थितःसूर्योबिंदुचक्रेचचन्द्रमाः ॥ लोचनस्थःकुजोज्ञेयोहृदयेज्ञःप्रकीर्तितः ॥ ६६ ॥ विष्णुस्थानेगुरुंविद्याच्छुक्रेशुक्रोव्यवस्थितः ॥ नाभिस्थानेस्थितोमंदोमुखेराहुःप्रकीर्तितः ॥ ६७ ॥ वायुस्थानेस्थितःकेतुःशरीरेग्रहमण्डलम् ॥ एवंसर्वस्वरूपेणचिंतयेदात्मनस्तनुम् ॥ ६८ ॥ सदाप्रभातसमयेबद्धपद्मासनःस्थितः ॥ षट्चक्रचिंतनंकुर्याद्यथोक्तमजपाक्रमम् ॥ ६९ ॥ अजपानामगायत्रीमुनीनांमोक्षदायिनी ॥ अस्याः संकल्पमात्रेणसर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ ७० ॥ शृणुतार्क्ष्यप्रवक्ष्येऽहमजपाक्रममुत्तमम् ॥ यंकृत्वासर्वदाजीवोजीवभावंविमुंचति ॥ ७१ ॥ मूलाधारःस्वाधिष्ठानंमणिपूरकमेवच ॥ अनाहतंविशुद्ध्याख्यमाज्ञाषट्चक्रमुच्यते ॥ ७२ ॥

यथोक्त अजपाके क्रमसे करना ॥ ६९ ॥ अजपा नाम गायत्री है. सो गायत्री मुनियोंको मोक्षके देनेवाली है. इसके संकल्पमात्रसे संपूर्ण मनुष्य पापोंसे छूटते हैं ॥ ७० ॥ हे गरुड़ ! सुनो. अजपाका उत्तम क्रम कहताहूं. जिस क्रमके सदा करनेसे जीव जीवभावको त्यागताहै ॥ ७१ ॥ मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहत, विशुद्धि, और आज्ञा ये षट्चक्र कहे हैं ॥ ७२ ॥

मूलाधारमें, लिंगस्थानमें, नाभिमें, हृदयमें, कंठमें, भ्रुकुटीमें और ब्रह्मरंध्रमें क्रमसे पूर्व कहे षट्चक्रोंका चिंतवन् करना ॥ ७३ ॥ अब मूलाधारादि षट् चक्रोंके चिंतवनका स्वरूप कहतेहैं. आधारचक्रके चार दल (व श ष स) हैं. इसका अग्नि जैसा वर्ण है १। स्वाधिष्ठान चक्र सूर्यसमान है (ब भ म य र ल) ये षट् दल हैं २। तथा मणिपूरक चक्रका रक्त वर्ण है (ड ढ ण त थ द ध न प फ) ये दश दल हैं ३। और अनाहतचक्रका सुवर्णमय स्वरूप है (क ख ग घ ङ च छ ज झ ञ ट ठ) ये १२ दल हैं ॥ ७४ ॥ तथा विशुद्धिचक्र चंद्रमाजैसा प्रकाशित है, षोडश स्वरदलोंसे सहित है ५। तथा भृकुटीमें आज्ञाचक्र रक्तवर्णका है 'हं स' ये दो दल हैं ६। ऐसे षट् चक्र

मूलाधारेलिंगदेशेनाभ्यांहृदिचकंठके ॥ भ्रुवोर्मध्येब्रह्मरन्ध्रेक्रमाच्चक्राणिचिंतयेत् ॥ ७३ ॥ आधारंतुचतुर्दलानलसमंवासांतवर्णा श्रयंस्वाधिष्ठानमपिप्रभाकरसमंबालांतषट्पत्रकम् ॥ रक्ताभंमणिपूरकंदशदलंडाद्यंफकारांतकंपत्रंद्वादशभीरनाहतपुरंहैमंकठांतावृतम् ॥ ७४ ॥ पत्रैःसस्वरषोडशैःशशधरज्योतिर्विशुद्धांबुजंहंसेत्यक्षरयुग्मकंद्वयदलंरक्ताभमात्रांबुजम् ॥ तस्मादूर्ध्वततंप्रभासितमिदं पद्मंसहस्रच्छदंसत्यानन्दमयंसदाशिवमयंज्योतिर्मयंशाश्वतम् ॥ ७५ ॥ गणेशंचविधिंविष्णुंशिवंजीवंगुरुंततः ॥ व्यापकंचपरंब्रह्म क्रमाच्चक्रेषुचिंतयेत् ॥ ७६ ॥ एकविंशतसहस्राणिषट्शतान्यधिकानिच ॥ अहोरात्रेणश्वासस्यगतिःसूक्ष्मास्मृताबुधैः ॥ ७७ ॥ हकारेणबहिर्यातिसकारेणविशेत्पुनः ॥ हंसोहंसेतिमंत्रेणजीवोजपतितत्त्वतः ॥ ७८ ॥

कहे. इन षट् चक्रोंके ऊपर प्रकाशमान सहस्रदलोंका कमल है. वोह कमल सत्वमयी, आनंदमयी, सदाशिवमयी, ज्योतिर्मयी अनादिकालका स्थित है. उस कमलमें ब्रह्मस्वरूपका चिंतवन करना ॥ ७५ ॥ इन षट्चक्रोंमें गणेश, ब्रह्मा, विष्णु, शिव, जीव, और गुरु इन्होंका क्रमसे चिंतवन करना ॥ ७६ ॥ तथा एकदिन रातसे २१००० और ६०० श्वास आते हैं यह सूक्ष्मगति पंडितोंने कही है ॥ ७७ ॥ 'हं' ऐसे वर्णसे बाहिर आता है, 'सः' ऐसे वर्णसे पीछे श्वास प्रवेश करता है. ऐसे 'हंसोहंसः' इस मंत्रसे जीव यथार्थ जपता है ॥ ७८ ॥

उस जप संख्यामेंसे ६०० गणेशजीको अर्पण करै; ६००० ब्रह्माजीके अर्थ, ६००० विष्णुको, ६००० महादेवको॥७९॥ १००० जीवात्माको, १००० गुरुको, १००० चि-द्रात्मा अर्थात् चैतन्यरूप आत्माके लिये ऐसी जपसंख्या निवेदन करै ॥ ८० ॥ इन षट्चक्रोंमें स्थित ब्रह्मके अंशभूत गणेशादि देवताओंको श्रेष्ठ संप्रदायके जाननेवाले अरुणादिक चिंतवन करते हैं॥ ८१ ॥ शुकदेवजी आदि मुनि अपने शिष्योंको उपदेश करते हैं. इसीसे महज्जनोंकी प्रवृत्ति जान, सदा बुद्धिमान् ध्यान करै॥ ८२ ॥ पीछे सर्व चक्रोंमें मानसी पूजा करके, एकाग्र बुद्धिसे पीछे गुरुके उपदेशसे अजपा गायत्रीका जप करना॥ ८३ ॥ अब मानसी पूजा लिखते हैं. ब्रह्मरंध्रमें नीचे मुखवाले १०००

षट्शतंगणनाथायषट्सहस्रंतुवेधसे ॥ षट्सहस्रंचहरयेषट्सहस्रंहरायच ॥ ७९ ॥ जीवात्मनेसहस्रंचसहस्रंगुरवेतथा ॥ चिदात्मनेसहस्रंचजपसंख्यांनिवेदयेत् ॥ ८० ॥ एतांश्चक्रगतान्ब्रह्ममयूखान्मुनयोऽमरान् ॥ सत्संप्रदायवेत्तारश्चिंतयंत्यरुणादयः ॥ ८१ ॥ शुकादयोऽपिमुनयःशिष्यानुपदिशंतिच ॥ अतःप्रवृत्तिंमहतांध्यात्वाध्यायेत्सदाबुधः ॥ ८२ ॥ कृत्वाचमानसींपूजांसर्वचक्रेष्वनन्यधीः ॥ ततोगुरूपदेशेनगायत्रीमजपांजपेत् ॥ ८३ ॥ अधोमुखेत्ततोरन्ध्रेसहस्रदलपंकजे ॥ हंसगंश्रीगुरुंध्यायेद्वराभयकरांबुजम् ॥ ८४ ॥ क्षालितंचिंतयेद्देहंतत्पादामृतधारया॥ पंचोपचारैःसंपूज्यप्रणमेत्तत्स्तवेनच॥ ८५ ॥ ततःकुंडलिनींध्यायेदारोहादवरोहतः ॥ षट्चक्रकृतसंचारांसार्धत्रिवलयांस्थिताम् ॥ ८६ ॥

दलोंका कमल है. उसपर हंसपर बैठे भये वर और अभयदान देनेवाले हस्तकमल जिनके: ऐसे श्रीगुरुका ध्यान करना ॥ ८४ ॥ उस गुरुके चरणामृतकी धारासे स्नान कर रही ऐसी अपनी देहको चिंतवन करना. पंचोपचारोंसे पूजकर, उसकी स्तुति करके नमस्कार करना॥ ८५॥ पीछे परात्पर ब्रह्मकुला कुंडलिनीका ध्यान करना. कैसी हैं कुंड-लिनी? आरोहमें प्रकाशमान, अवरोहमें अमृत स्रवती मूलाधारादि षट्चक्रोंमें चढ़नेसे किया है संचार अर्थात् गमन, साढ़े तीन फेरोंसे सोतेहुये सर्पके आकारसे स्थित ॥ ८६ ॥

पीछे ब्रह्मरंध्रसे बाहिर प्राप्त भई ऐसे सुषुम्णा नाम धामको ध्यान करना. तैसे तिस सुषुम्णाधामसे गयेहुये उस विष्णुके परमपदमें जाते हैं ॥ ८७ ॥ पीछे मेरे चिंतन करे भये स्वयंज्योति सनातन: सदा आनंदकारी स्वरूपका ब्राह्मसंज्ञक मुहूर्तमें (बड़ी सबेरे) ध्यान करना ॥ ८८ ॥ ऐसे गुरुके उपदेशसे मनको निश्चलतामें प्राप्त करना. केवल यत्नसे नहीं करना; कारण गुरुविना पतन होता है ॥ ८९ ॥ ऐसे अंतर्यज्ञविधान करके, पीछे बहिर्यज्ञ करना. स्नानसंध्यादि नित्यकर्म करके, श्रीहरि और महादेवजीको पूजना

ततोध्यायेत्सुषुम्णाख्यंधामरंध्राद्बहिर्गतम् ॥ तथातेनगतायांतितद्विष्णोःपरमंपदम् ॥ ८७ ॥ ततोमच्चिंतितंरूपंस्वयंज्योतिःसनातनम् ॥ सदानंदंसदाध्यायेन्मुहूर्तेब्राह्मसंज्ञके ॥ ८८ ॥ एवंगुरूपदेशेन मनोनिश्चलतांनयेत् ॥ नतुस्वेनप्रयत्नेनतद्विनापतनंभवेत् ॥ ८९ ॥ अंतर्यागंविधायैवंबहिर्यागंसमाचरेत् ॥ स्नानसंध्यादिकंकृत्वाकुर्याद्धरिहरार्चनम् ॥ ९० ॥ देहाभिमानिनामंतर्मुखीवृत्तिर्नजायते ॥ अतस्तेषांतुमद्भक्तिःसुकरामोक्षदायिनी ॥ ९१ ॥ तपोयोगादयोमोक्षमार्गाःसंतितथापिच ॥ समीचीनस्तुमद्भक्तिमार्गःसंसरतामिह ॥ ॥ ९२ ॥ ब्रह्मादिभिश्चसर्वज्ञैरयमेवविनिश्चितः ॥ त्रिवारंवेदशास्त्राणिविचार्यचपुनःपुनः ॥ ९३ ॥ यज्ञादयोऽपिसद्धर्माश्चित्तशोधनकारकाः ॥ फलरूपाचमद्भक्तिस्तांलब्ध्वानावसीदति ॥ ९४ ॥

॥ ९० ॥ देहाभिमानियोंको अंतर्मुखीवृत्ति नहीं होती है इसीसे उन्होंको हमारी भक्ति सुलभ है, जो मोक्षभी देनेवाली है ॥ ९१ ॥ तपयोग आदि अनेक मोक्षमार्ग हैं तथापि इस संसारमें भ्रमते रहे पुरुषोंको हमारा भक्तिमार्ग उत्तम है ॥ ९२ ॥ ब्रह्मादि सर्वज्ञोंने तीनबार वेदशास्त्रोंको विचार कर २ के यह निश्चय किया है ॥ ९३ ॥ यदपि यज्ञादि श्रेष्ठ धर्म चित्तको शुद्ध करनेवाले हैं, तदपि हे गरुड़ ! उनका फल देनेवाली तौ हमारी भक्ति है, उसको प्राप्त भये पुरुष क्लेश नहीं पाते हैं ॥ ९४ ॥

हे गरुड ! सुकृतीपुरुष ऐसे आचरण करते हैं. और मेरी भक्तिके संयोगसे सनातन मोक्षको प्राप्त होते हैं ॥ ९५ ॥ इति श्रीगरुडपुराणके सारोद्धारे ज्ञानबोधिनी नाम भाषाटीकायां सुकृतिजनजन्माचरणनिरूपणो नाम पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ ॥ अब गरुडजी पूंछते हैं–हे दयासिंधो ! जीवको अज्ञानसे संसृति अर्थात् जन्म मरण होता है यह मैंने सुना. अब सनातन मोक्षके उपायको सुननेकी इच्छा करताहूं ॥ १ ॥ हे भगवन ! हे देवदेवेश ! हे शरणागतवत्सल ! असार सर्व दुःखोंसे मलीन ऐसे इस घोर संसारमें ॥ २ ॥ नानाप्रकारके शरीरोंमें स्थित ऐसी अनंत जीवराशी हैं. वोह जीवसमुदाय जन्मता है और मरता है. उन्होंका पार

एवमाचरणंताक्ष्र्यकरोतिसुकृतीनरः ॥ संयोगेनचमद्भक्त्यामोक्षंयातिसनातनम् ॥ ९५ ॥ इतिश्रीगरुडपुराणेसारोद्धारेसुकृतिजनजन्माचरणनिरूपणो नामपंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ ॥ गरुडउवाच ॥ श्रुतामयादयासिंधोह्यज्ञानाज्जीवसंसृतिः ॥ अधुनाश्रोतुमिच्छामिमोक्षोपायंसनातनम् ॥ १ ॥ भगवन्देवदेवेशशरणागतवत्सल ॥ असारेघोरसंसारेसर्वदुःखमलीमसे ॥ २ ॥ नानाविधशरीरस्थाअनंताजीवराशयः ॥ जायंतेचम्रियंतेचतेषामंतोनविद्यते ॥ ३ ॥ सदादुःखातुराएवनसुखीविद्यतेक्वचित् ॥ केनोपायेनमोक्षेशमुच्यंतेवदमेप्रभो ॥ ४ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ॥ शृणुताक्ष्र्यप्रवक्ष्यामियन्मांत्वंपरिपृच्छसि ॥ यस्यश्रवणमात्रेणसंसारान्मुच्यतेनरः ॥ ५ ॥ अस्तिदेवःपरब्रह्मस्वरूपीनिष्कलःशिवः ॥ सर्वज्ञःसर्वकर्ताचसर्वेशोनिर्मलोऽद्वयः ॥ ६ ॥

विद्यमान नहीं है ॥ ३ ॥ सदा दुःखोंमें पीडित रहते हैं. उसमें कोई सुखी विद्यमान नहीं है. सो हे मोक्षनाथ ! हे प्रभो ! कौन उपायसे छूटै सो उपाय हमको कहो ॥ ४ ॥ श्रीभगवान कहते हैं–हे गरुड ! सुनो. जो हमको पूंछते हो, सो कहता हूं; जिसके सुननेमात्रसेही संसारसे मनुष्य छूटता है ॥ ५ ॥ परब्रह्मस्वरूपी, निष्कल, शिव, सर्वज्ञ, सर्वकर्ता, सर्वके नाथ, निर्मल, अद्वितीय ऐसा ईश्वर देव है ॥ ६ ॥

वह स्वयंज्योति, अनाद्यंत, निर्विकार, ब्रह्मादिकोंसे पर, निर्गुण, और सच्चिदानंदस्वरूप है. उस परमात्माके अंशसे जीवसंज्ञक है ॥ ७ ॥ जैसे अग्निमेंसे चिनगाड़ी हों तैसे प्राचीन कर्मोंसे अनादि मायासे देहादि उपाधिसे भेदको प्राप्त भये वे जीव ॥ ८ ॥ सुखदुःखके देनेवाले पुण्यपापरूप अनादिकर्मोंसे नियंत्रित हुये उस उस जातिमें प्रगटहुआ आयु भोगनेके लिये कर्मोंका बनाया जो स्थूल शरीर ॥९॥ उसको जन्म जन्मप्रति प्राप्त होता है. फिर उस स्थूल शरीरसे दूसरा सूक्ष्म लिंगशरीर है. हे गरुड! जहांतक मोक्ष नहीं होता तहांतक अक्षर रहता है अर्थात् नाश नहीं होता है ॥ १० ॥ स्थावर, कृमि, अज, पक्षी, पशु, मनुष्य, धर्मात्मा देवता, मोक्षको जानेवाले

स्वयंज्योतिरनाद्यंतोनिर्विकारःपरात्परः॥ निर्गुणःसच्चिदानंदस्तदंशाज्जीवसंज्ञकः॥ ७॥ अनाद्यविद्योपहतायथाग्नौविस्फुलिंगकाः॥ देहाद्युपाधिसंभिन्नास्तेकर्मभिरनादिभिः ॥ ८ ॥ सुखदुःखप्रदैःपुण्यपापरूपैर्नियंत्रिताः ॥ तत्तज्जातियुतंदेहमायुर्भोगंचकर्मजम् ॥ ९ ॥ प्रतिजन्मप्रपद्यंतेतेषामपिपरंपुनः ॥ ससूक्ष्मलिंगशारीरमामोक्षादक्षरंखग ॥ १० ॥ स्थावराःकृमयश्चाजाःपक्षिणःपशवोनराः॥ धार्मिकास्त्रिदशास्तद्वन्मोक्षिणश्चयथाक्रमम् ॥ ११ ॥ चतुर्विधशरीराणिधृत्वामुक्त्वासहस्रशः ॥ सुकृतान्मानवोभूत्वाज्ञानीचेन्मोक्षमाप्नुयात् ॥ १२ ॥ चतुरशीतिलक्षेषुशरीरेषुशरीरिणाम् ॥ नमानुषंविनाऽन्यत्रतत्त्वज्ञानंतुलभ्यते ॥ १३ ॥ अत्रजन्मसहस्राणांसहस्रैरपिकोटिभिः ॥ कदाचिल्लभतेजंतुर्मानुष्यंपुण्यसंचयात् ॥ १४ ॥

॥ ११ ॥ ये यथाक्रमसे कहेभये जीव स्वेदज, अंडज, उद्भिज्ज, जरायुज यें चार प्रकारके शरीर हजारों बेर धारण कर, और छोड़के, फिर सुकृतसे मनुष्य होकर जो ज्ञानी हो तो मोक्षको प्राप्त होता है ॥१२॥ चौरासी लक्ष योनिमें देह धारण करनेवाले जीवोंको मनुष्यजन्मविना मोक्षका उपाय रूप तत्वज्ञान और कहीं नहीं प्राप्त होता है ॥ १३ ॥ यहा हजारों कोटचान कोटी वर्षोंकरके पुण्यके संचयसे जीवको कभी मनुष्यजन्म प्राप्त होता है ॥ १४ ॥

सो मोक्षका साधनरूप दुर्लभ मनुष्यदेह प्राप्त होकर, जो आत्माको नहीं तिरावे तिससे अधिक पापी यहां कौन है ? ॥ १५ ॥ जो मनुष्य उत्तमकुलमें जन्म पाकर, इंद्रियोंकी सुंदरताको प्राप्त होकर, आत्माके हितको नहीं जानै है वो ब्रह्मघाती होता है ॥ १६ ॥ शरीरविना किसीके पुरुषार्थ नहीं विद्यमान है. तिसीसे देह और धनकी रक्षा करना और पुण्यकर्म सिद्ध करना ॥ १७ ॥ सदा आत्मा अर्थात् मनुष्यशरीरकी रक्षा करना; कारण मनुष्यशरीर सर्व पदार्थोंका कारण है. इसीसे देहरक्षामें यत्न करते रहना; कारण जीवताहुवा कल्यण देखता है ॥१८॥ गयाभया ग्राम फेर आता है; तैसेही क्षेत्र, धन, घर, शुभ कर्म, अशुभ कर्म ये सब वारंवार प्राप्त होते हैं,

सोपानभूतंमोक्षस्यमानुष्यंप्राप्यदुर्लभम् ॥ यस्तारयतिनात्मानंतस्मात्पापतरोऽत्रकः ॥ १५ ॥ नरःप्राप्येतरंजन्मलब्ध्वाचेंद्रिय सौष्ठवम् ॥ नवेत्त्यात्महितंयस्तुसवेद्ब्रह्मघातकः ॥ १६ ॥ विनादेहेनकस्यापिपुरुषार्थोनविद्यते ॥ तस्माद्देहंधनंरक्षेत्पुण्यकर्माणि साधयेत् ॥ १७ ॥ रक्षयेत्सर्वदात्मानमात्मासर्वस्यभाजनम् ॥ रक्षणेयत्नमातिष्ठेज्जीवन्भद्राणिपश्यति ॥ १८ ॥ पुनर्ग्रामःपुनःक्षेत्रंपुन र्वित्तंपुनर्गृहम् ॥ पुनःशुभाशुभंकर्मनशरीरंपुनःपुनः ॥ १९ ॥ शरीररक्षणोपायाःक्रियंतेसर्वदाबुधैः ॥ नेच्छंतिचपुनस्त्यागमपि कुष्ठादिरोगिणः ॥ २० ॥ तद्गोपितंस्याद्धर्मार्थंधर्मोज्ञानार्थमेवच ॥ ज्ञानंतुध्यानयोगार्थमचिरात्प्रविमुच्यते ॥ २१ ॥

परंतु मनुष्यशरीर वारंवार नहीं आता है ॥ १९ ॥ शरीररक्षणका उपाय सदाही बुद्धिवानोंको करना चाहिये. देखिये कुष्ठआदि महारोगीभी शरीरत्यागकी इच्छा नहीं करते हैं ॥ २० ॥ वो रक्षा किया भया शरीर धर्मकेवास्ते होता है, धर्मसे ज्ञानकी प्राप्ति होती है, ज्ञानसे ध्यानयोग प्राप्त होता है, ध्यानयोगसे जल्दीही जन्ममरणसे छूटता है ॥ २१ ॥

आत्मा नाम मन कदाचित् दुःसंगादि असत्कर्मोंसे अपनेको नहीं निवारण करै तौ फिर अपनेसे हितकारी दूसरा कौनसा आत्माको तिरावेगा ?॥२२॥ जो पुरुष इस मनुष्य जन्ममेंभी नरकरूपी रोगकी औषधी नहीं करैगा तो वो मनुष्य जिसमें औषधी नहीं ऐसे देशमें जाकर क्या करैगा ? अर्थात् मनुष्यजन्म पाकर जो उत्तम कर्मोंसे कल्याण नहीं करता है वोह विचारहीन मूर्ख है॥ २३॥ जरा अवस्था व्याघ्रीके समान डराती है; भिन्नघटसे जल जाय तैसे आयु जाती है; शत्रुवोंके जैसे रोग नाश करते हैं, तिसीसे कल्याणका अभ्यास करना ॥ २४ ॥ जहांतक दुःख लगे नहीं, जहांतक आपदा नहीं प्राप्त होवै, जहांतक इंद्रियां विकल नहीं हों वहांतक कल्याणका उपाय करना॥ २५॥

आत्मैवयदिनात्मानमहितेभ्योनिवारयेत् ॥ कोन्योहितकरस्तस्मादात्मानंतारयिष्यति ॥ २२ ॥ इहैवनरकव्याधेश्चिकित्सानकरोति यः ॥ गत्वानिरौषधंदेशंव्याधिस्थःकिंकरिष्यति ॥२३॥ व्याघ्रीवास्तेजराचायुर्यातिभिन्नघटांबुवत् ॥ निघ्नंतिरिपुवद्रोगास्तस्माच्छ्रेयः समभ्यसेत् ॥ २४ ॥ यावन्नाश्रयतेदुःखंयावन्नायांतिचापदः ॥ यावन्नेंद्रियवैकल्यंतावच्छ्रेयःसमभ्यसेत् ॥ २५ ॥ यावत्तिष्ठतिदेहोऽयंतावत्तत्त्वंसमभ्यसेत् ॥ संदीप्तकोणभवनेकूपंखनतिदुर्मतिः ॥ २६ ॥ कालोनज्ञायतेनानाकार्यैःसंसारसंभवैः ॥ सुखंदुःखंजनोहंत नवेत्तिहितमात्मनः ॥ २७ ॥ जातानार्तान्मृतानापद्ग्रस्तान्दृष्ट्वाचदुःखितान् ॥ लोकोमोहसुरांपीत्वानबिभेतिकदाचन ॥ २८ ॥

जहांतक यह शरीर स्थित रहे वहांतक तत्वका अभ्यास करना, घरका कोना जलने बाद कुवा खोदने लगताहै वह मूर्ख है ॥ २६ ॥ देखो संसारमें प्रगट हुये नानाकार्योंसे काल नहीं जाना जाता है. अहो ! सुख दुःख देखकर, अपना हित नहीं जानता है ॥ २७ ॥ जन्मे हुवोंको, दुःखीभये हुवोंको, मरेहुवोंको, आपदामें डूबरहे हुवोंको और दुःखी जनोंको देखकरकेभी, लोग मोहरूपी मदिरा पीकर, कभी नहीं डरते हैं ॥ २८ ॥

देखो संपदा स्वप्नमें हो वैसी है. यौवन पुष्पके समान है. आयु बिजलीके समान चपल है. इन्होंको जानतेहुये कौन बुद्धिवान्के धीरजता हो ? ॥ २९ ॥ प्रथम तौ सौ वर्षका जीवनांही बिलकुल थोड़ा है. उसमें आधा नींद और आलस्यमें जाता है. अवशेष अल्प रहाहुवाभी बाल्यपनामें, रोगोंमें, जरा अवस्थामें निष्फल जाता है ॥ ३० ॥ प्रारब्ध करनेके योग्य मोक्षके उपायमें निरुद्योग, द्रव्यचिंतवनरूपी जागनेमें सोताहुवा, भयके स्थानमें विश्वासकर्ता, अहो ! ऐसा कौन मनुष्य नहीं माराजायगा ॥ ३१ ॥ जीवके वश हुए, नित्य नहीं रहनेवाले व जलके फेनके समान अस्थिर ऐसे देहके विषे कैसे निर्भयसे स्थित रहता है ? ॥ ३२ ॥ अहो ! परिणाममें विषतुल्य विषयमें हमारा इष्टलाभ

संपदः स्वप्नसंकाशा यौवनं कुसुमोपमम् ॥ तडिच्चपलमायुष्यं कस्य स्याज्जानतो धृतिः ॥ २९ ॥ शतजीवितमत्यल्पं निद्रालस्यैस्तदर्धकम् ॥ बाल्यरोगजरादुःखैरल्पं तदपि निष्फलम् ॥ ३० ॥ प्रारब्धव्ये निरुद्योगो जागर्तव्ये प्रसुप्तकः ॥ विश्वस्तव्यो भयस्थाने हा नरः को न हन्यते ॥ ३१ ॥ तोयफेनसमे देहे जीवेनाक्रम्य संस्थिते ॥ अनित्यप्रियसंवासे कथं तिष्ठति निर्भयः ॥ ३२ ॥ अहिते हितसंज्ञः स्यादध्रुवे ध्रुवसंज्ञकः ॥ अनर्थे चार्थविज्ञानः स्वमर्थं यो न वेत्ति सः ॥ ३३ ॥ पश्यन्नपि प्रस्खलति शृण्वन्नपि न बुध्यति ॥ पठन्नपि न जानाति देवमायाविमोहितः ॥ ३४ ॥ तन्निमज्जज्जगदिदं गंभीरे कालसागरे ॥ मृत्युरोगजराग्राहैर्न कश्चिदपि बुध्यते ॥ ३५ ॥

हुवा है ऐसी संज्ञा जिसकी, नाशवान् देहादिकोंमें ध्रुवसंज्ञा जिसकी, अनर्थ अर्थात् दंभ अनृतादि पन्द्रह अनर्थोंके मूल धनमें अर्थज्ञान रहा ऐसा मनुष्य मुक्ति देनेवाला आत्मज्ञानरूपी अपना प्रयोजन नहीं जानताहै ॥ ३३ ॥ यह देखता हुवाभी गिरताहै, सुनता हुवाभी नहीं चेत करता है, पठन करता हुआभी नहीं जानैहै. अहो ! देवमायासे मोहित है ॥ ३४ ॥ यह जगत् मृत्यु, रोग, व जरा इन ग्राहोंसे गंभीर काल समुद्रमें डूब रहा है. सो ! कोई नहीं जागता है ॥ ३५ ॥

क्षण क्षण प्रति काल नष्ट होता जाता है, परंतु जाननेमें नहीं आता है. जैसे कच्चा कलश जलमें स्थितहुवा भी पिघलता हुवा जाननेमें नहीं आता है ॥ ३६ ॥ वायुकोभी रोंक सकताहै, आकाशभी खंडन कर सकता है. समुद्रकी तरंगोंको भी गूंथ सकता है. अहो यह अघटित है तोभी कर सकता है, परंतु शरीर नहीं राख सकता है ॥ ३७ ॥ जिस कालकरके समुद्रका जलभी सुखाया जाता है; पृथ्वी दग्ध होती है; मेरु पर्वतभी फूटता है, तौ शरीरकी क्या कथा है ? ॥ ३८ ॥ यह पुत्र हमारा है, यह स्त्री हमारी है, यह धन हमारा है, ये बांधव हमारे हैं, इस प्रकार बोल रहे ऐसे प्रमत्त मनुष्यरूपी बकरेको कालरूपी वृक अर्थात् भेड़िया बलसे खाता है ॥ ३९ ॥ यह किया है और यह करनेका है

प्रतिक्षणमयंकालःक्षीयमाणोनलक्ष्यते ॥ आमकुंभइवांभस्थोविशीर्णोनविभाव्यते ॥ ३६ ॥ युज्यतेवेष्टनंवायोराकाशस्यचखंडनम् ॥
ग्रथनंचतरंगाणामास्थानायुषियुज्यते ॥ ३७ ॥ पृथिवीदह्यतेयेनमेरुश्चापिविशीर्यते ॥ शुष्यतेसागरजलंशरीरस्यचकाकथा ॥ ३८ ॥
अपत्यंमेकलत्रंमेधनंमेबांधवाश्चमे ॥ जल्पंतमितिमर्त्याजंहंतिकालवृकोबलात् ॥ ३९ ॥ इदंकृतमिदंकार्यमिदमन्यत्कृताकृतम् ॥ एकमी
हासमायुक्तंकृतांतःकुरुतेवशम् ॥ ४० ॥ श्वःकार्यमद्यकुर्वीतपूर्वाह्णेचापराह्णिकम् ॥ नहिमृत्युःप्रतीक्षेतकृतंवाप्यथवाऽकृतम् ॥ ४१ ॥
जरादर्शितपंथानंप्रचंडव्याधिसैनिकम् ॥ मृत्युशत्रुमधिष्ठोऽसित्रातारंकिंनपश्यसि ॥ ४२ ॥ तृष्णासूचीविनिर्भिन्नंसिक्तंविषय
सर्पिषा ॥ रागद्वेषानलेपक्वंमृत्युरश्नातिमानवम् ॥ ४३ ॥

और दूसरा नहीं करनेका है: ऐसे चेष्टायुक्त पुरुषको काल वशीभूत करता है ॥४०॥ इसीसे दुसरे दिन करनेका पुण्यकर्म पहले दिनही करना. सायंकालमें करनेका प्रातःकाल करना; कारण मृत्यु, यह इसने किया है यह नहीं किया है सो नहीं देखती है ॥४१॥ वृद्धाअवस्थासे दिखाया है कालमार्ग, प्रचंड व्याधिरूपी जिसकी सेना है ऐसा मृत्युरूपी शत्रु खडा है; सो मनुष्य रक्षकको क्यों नहीं देखताहै ॥ ४२ ॥ तृष्णारूपी सुईसे भेदन किया, विषयरूपी घृतसे पक्व भया ऐसे मानवको मृत्यु भक्षण करती है ॥ ४३ ॥

बालकोंमें, यौवनअवस्थावालोंमें, वृद्धोंमें, गर्भमें प्राप्त हुयेोंमें व संपूर्णोंमें मृत्यु प्रवेश करती है, ऐसा जगत् है ॥ ४४ ॥ वो जीव अपने शरीरको त्यागकर, यमके स्थानमें आता है तौ फिर स्त्री, माता, पिता और पुत्र इन्होंका संबंध कौनसे कारणसे रहता है? ॥४५॥ दुःखका मूल संसार है वो संसार जिसका है वो दुःखी है. उस संसारका त्याग जिसने किया है वोही सुखी है, और कोई नहीं ॥ ४६ ॥ संपूर्ण दुःखोंकी उत्पत्ति करनेवाला, संपूर्ण आपदोंका स्थान, संपूर्ण पापोंका आश्रय, ऐसे संसारको क्षणमात्रमें त्यागना ॥ ४७ ॥ लोहा और काष्ठकी पाशोंसे बांधाहुवा पुरुष छूटता है, परंतु अहो! पुत्रदारमयी पाशसे कभी नहीं छूटता है ॥ ४८ ॥ जीव जितने मनके प्रियसंबंध

बालांश्चयौवनस्थांश्चवृद्धान्गर्भगतानपि ॥ सर्वानाविशतेमृत्युरेवंभूतमिदंजगत् ॥४४॥ स्वदेहमपिजीवोऽयंमुक्त्वायातियमालयम् ॥
स्त्रीमातृपितृपुत्रादिसंबंधःकेनहेतुना ॥४५॥ दुःखमूलंहिसंसारःसयस्यास्तिसदुःखितः ॥ तस्यत्यागःकृतोयेनससुखीनापरःकचित् ॥४६॥
प्रभवंसर्वदुःखानामालयंसकलापदाम् ॥ आश्रयंसर्वपापानांसंसारंवर्जयेत्क्षणात् ॥ ४७ ॥ लोहदारुमयैःपाशैःपुमान्बद्धोविमुच्यते ॥
पुत्रदारमयैःपाशैर्मुच्यतेनकदाचन ॥४८॥ यावंतःकुरुतेजंतुःसंबंधान्मनसःप्रियान् ॥ तावंतोऽस्यनिखन्यंतेहृदयेशोकशंकवः ॥४९॥
वंचिताशेषवित्तैस्तैर्नित्यंलोकोविनाशितः ॥ हाहंतविषयाहारैर्देहस्थेंद्रियतस्करैः ॥ ५० ॥ मांसलुब्धोयथामत्स्योलोहशंकुंनपश्यति ॥
सुखलुब्धस्तथादेहीयमबाधांनपश्यति ॥५१॥ हिताहितंनजानंतोनित्यमुन्मार्गगामिनः ॥ कुक्षिपूरणनिष्ठायेतेनरानारकाःखग ॥५२॥

करताहै, उतनेही इसके हृदयमें शोकरूपी शंकु पड़ते हैं ॥ ४९ ॥ ठगा है सर्व धन जिन्होंने ऐसे उन पुत्रदारादिकोंसे नित्य लोकनाश होताहै. अहो! विषय ग्रहण करनेवाले देहमें स्थित भये इंद्रियरूपी चोरोंसे नाश होताहै ॥५०॥ जैसे मांसका लोभी मत्स्य लोहाका शंकु नहीं देखताहै तैसे सुखका लोभी देहधारी यमकी बांधा नहीं देखता है ॥ ५१ ॥ हे गरुड! जो हित और अहित नहीं जानते हैं, नित्य उन्मार्गमें चलते हैं. और जो उदरपूरणमें निष्ठावाले हैं वे मनुष्य नरकमें जाते हैं ॥ ५२ ॥

निद्रा, भय, विषय व आहार ये सर्व प्राणीमात्रके तुल्य हैं इसीसे जो ज्ञानवान् हैं, वोही मनुष्य है और ज्ञानहीन पशु कहा है ॥ ५३ ॥ प्रभातमें मलमूत्रोंसे, मध्यान्हमें क्षुधा तृषासे, रात्रिमें कामदेव और निद्रासे मूढ मनुष्य दुःखको प्राप्त होते हैं ॥५४॥ अपनी देह, धन स्त्रीआदिकमें आसक्त हुए सर्वजीव जन्मते हैं. अहो ! अज्ञानसे मोहित हुये मरते हैं ॥ ५५ ॥ तिसीसे सदाही संग त्यागना. जो संग त्यागनेको समर्थ नहीं हो तौ महत्पुरुषोंका संग करना, महात्माका संग संसाररूपी रोगकी औषधं है ॥५६॥ सत्संग और ज्ञान ये दो निर्मल नेत्र हैं. जिसके ये दोनों नहीं हैं वोह मनुष्य अंधा है. सो कुमार्ग कैसे नहीं चलैगा ? ॥ ५७ ॥ अपने अपने वर्णआश्रमोंके आचारमें आसक्त

निद्रादिमैथुनाहाराःसर्वेषांप्राणिनांसमाः ॥ ज्ञानवान्मानवःप्रोक्तोज्ञानहीनःपशुःस्मृतः ॥ ५३ ॥ प्रभातेमलमूत्राभ्यांक्षुत्तृड्भ्यांमध्य गेरवौ ॥ रात्रौमदननिद्राभ्यांबाध्यंतेमूढमानवाः ॥ ५४ ॥ स्वदेहधनदारादिनिरताःसर्वजंतवः ॥ जायंतेचम्रियंतेचहाहंताज्ञानमो हिताः ॥ ५५ ॥ तस्मात्संगःसदात्याज्यःसर्वस्त्यक्तुंनशक्यते ॥ महद्भिःसहकर्तव्यःसंतःसंगस्यभेषजम् ॥ ५६ ॥ सत्संगश्चविवेकश्चनि र्मलंनयनद्वयम् ॥ यस्यनास्तिनरःसोऽधःकथंनस्यादमार्गगः ॥ ५७ ॥ स्वस्ववर्णाश्रमाचारनिरताःसर्वमानवाः ॥ नजानंतिपरंधर्मंवृ थानश्यंतिदांभिकाः ॥ ५८ ॥ क्रियायासपराःकेचिद्व्रतचर्यादिसंयुताः ॥ अज्ञानसंवृतात्मानःसंचरंतिप्रचारकाः ॥ ५९ ॥ नाममा त्रेणसंतुष्टाःकर्मकांडरतानराः ॥ मंत्रोच्चारणहोमाद्यैर्भ्रामिताःक्रतुविस्तरैः ॥ ६० ॥

होजानेसे सर्व मनुष्य परधर्म (मोक्षधर्म) नहीं जानते हैं, इसीसे मिथ्या आचारवाले वे नष्ट होते हैं ॥ ५८ ॥ कोई हम कर्मकांडी हैं ऐसेही परिश्रममें परायण हैं, कोई व्रतादिकोंसे क्षुधातृषायुक्त हैं ऐसे अज्ञानसे आच्छादित है आत्मा जिसका सो वंचक जैसे फिरते हैं ॥ ५९ ॥ स्वर्गादि सुखके नाममात्रसे प्रसन्न ऐसे मनुष्य कर्मकांडमें परायण हुये मंत्रका उच्चारण और होमादिकोंसे यज्ञविस्तार करके स्वर्गसुखकी इच्छा करते हैं ॥ ६० ॥

एकवार भोजन 'व' उपवास करनेको आदिले, शरीरशोषक नियमोंसे मेरी मायासे मोहित हुये मूढ स्वर्गसुखकी इच्छा करते हैं ॥ ६१ ॥ देहको दंड देनेमात्रसे क्या अज्ञानीकी मुक्ति होती है? क्या बिलको ताड़ना देनेसे बड़ा सर्प मरता है? ॥ ६२ ॥ जटाका भार और मृगचर्मसे युक्त, कपटके वेष धरनेवाले संसारमें ज्ञानीके जैसे स्वयं भ्रमते हैं और और मनुष्योंको भ्रमाते हैं ॥६३॥ संसारके सुखोंमें आसक्त हम ब्रह्मनिष्ठ हैं इसीसे हमको विषयसुखकी आसक्तिका दोष नहीं है, ऐसें जो बोलता है वो कर्म और ब्रह्म दोनोंसे भ्रष्ट है. उसको जैसा चांडालको त्यागे तैसा त्यागना ॥ ६४ ॥ जिन्होंके घर और बन तुल्य हैं और संसारमें लज्जारहित हैं, नंगे रहते हैं ऐसे गर्दभादि पशु

एकभुक्तोपवासाद्यैर्नियमैःकायशोषणैः ॥ मूढाःपरोक्षमिच्छंतिममम।याविमोहिताः ॥ ६१ ॥ देहदंडनमात्रेणकामुक्तिरविवेकिनाम् ॥ वल्मीकताडनादेवमृतःकुत्रमहोरगः ॥ ६२ ॥ जटाभाराजिनैर्युक्तादांभिकावेषधारिणः ॥ भ्रमंतिज्ञानिवल्लोकेभ्रामयंतिजनानपि ॥ ६३ ॥ संसारजसुखासक्तंब्रह्मज्ञोऽस्मीतिवादिनम् ॥ कर्मब्रह्मोभयभ्रष्टंतंत्यजेदंत्यजंयथा ॥ ६४ ॥ गृहारण्यसमालोकेगतव्रीडादिगंबराः ॥ चरंतिगर्दभाद्याश्चविरक्तास्तेभवंतिकिम् ॥ ६५ ॥ मृद्भस्मोद्धूलनादेवमुक्ताःस्युर्यदिमानवाः ॥ मृद्भस्मवासीनित्यंश्वासकिंमुक्तो भविष्यति ॥ ६६ ॥ तृणपर्णोदकाहाराःसततंवनवासिनः ॥ जंबूकाखुमृगाद्याश्चतापसास्तेभवंतिकिम् ॥ ६७ ॥ आजन्ममरणांतंच गंगादितटिनीस्थिताः ॥ मंडूकमत्स्यप्रमुखायोगिनस्तेभवंतिकिम् ॥ ६८ ॥

विचरते हैं वे क्या विरक्त होते हैं? ॥ ६५ ॥ मृत्तिका और भस्म लगानेसे जो कदाचित् मनुष्य मुक्त हो जाय तब तौ मृत्तिका और भस्ममें वास करनेवाला श्वान क्या मुक्त हो जाता है? अर्थात् ज्ञानविना मुक्ति नहीं है ॥ ६६ ॥ तृण, पान व जल इन्होंको आहार करनेवाले, सदा वनमें रहनेवाले जंबूक, मूषा, मृग इत्यादिक क्या तपस्वी होते हैं? ॥ ६७ ॥ जन्मसे लेकर, मरनेतक गंगादिकोंका तटसेवन करनेवाले मेंडुक मत्स्य आदि क्या योगी होते हैं? ॥ ६८ ॥

पारावत शिला (कंकर) आहार करते हैं; पपीहा कभी पृथ्वीका जल नहीं पीते हैं; वे क्या व्रतधारण करनेवाले होते हैं ? ॥ ६९ ॥ तिसीसे ये कहेभये कर्म केवल लोकरंजन करनेहारे हैं हे गरुड़! मोक्षका कारण तौ साक्षात् तत्त्वज्ञान है ॥ ७० ॥ हे गरुड ! षट्शास्त्ररूपी महाकूपमें पड़े ऐसे आत्मज्ञानको नहीं जाननेवाले दो धर्मोंका पशु ब्रह्मके स्वरूपको नहीं जानते हैं. पशुके जैसे अतिकठिन अर्थके विचाररूपी पाशसे बँधेभये रहते हैं ॥७१॥ वेदशास्त्ररूपी घोर समद्रमें इधर उधर एक ग्रंथसे दूसरे ग्रंथके अध्ययनादिकोंमें व्याकुल हुये शोकको आदिले, सब तरंगके रोकनेमें मग्न हुये (अद्वैत) ब्रह्मस्वरूपको नहीं जानते हैं. तथा कुत्सित तर्कोंसे ग्रसितहुये स्थित रहते हैं ॥ ७२ ॥

पारावताःशिलाहाराःकदाचिदपिचातकाः ॥ नपिबंतिमहीतोयंव्रतिनस्तेभवंतिकिम् ॥ ६९ ॥ तस्मादित्यादिकंकर्मलोकरंजनकारकम् ॥ मोक्षस्यकारणंसाक्षात्तत्त्वज्ञानंखगेश्वर ॥ ७० ॥ षट्दर्शनमहाकूपेपतिताःपशवःखग ॥ परमार्थंनजानंतिपशुपाशनियंत्रिताः ॥ ७१ ॥ वेदशास्त्रार्णवेघोरेऊह्यमानाइतस्ततः ॥ षडूर्मिनिग्रहग्रस्तास्तिष्ठंतिहिकुतार्किकाः ॥७२॥ वेदागमपुराणज्ञःपरमार्थंनवेत्तियः ॥ विडंबकस्यतस्यैवतत्सर्वंकाकभाषितम् ॥ ७३ ॥ इदंज्ञातमिदंज्ञेयमितिचिंतासमाकुलाः ॥ पठंत्यहर्निशंशास्त्रंपरतत्त्वपराङ्मुखाः ॥ ७४ ॥ वाक्यच्छन्दोनिबंधेनकाव्यालंकारशोभिताः ॥ चिंतयादुःखितामूढास्तिष्ठन्तिव्याकुलेंद्रियाः ॥ ७५ ॥

वेद शास्त्र व पुराणका ज्ञाता होकर भी परमार्थ नहीं जानता है विडंबनारूपी उसका वोह सर्वज्ञतापना और वक्तापना काकवाणीके जैसे व्यर्थ है ॥ ७३ ॥ ' यह हमने पढ़लिया है, यह फिर पढ़ेंगे ' ऐसे चिंतासे व्याकुल रात दिवस शास्त्र पढ़ते हैं. पर परमतत्व प्राप्तही नहीं होता है ॥ ७४ ॥ वाक्य और छन्दोंके निबंध करके काव्यालंकारोंसे शोभित हुये तथापि चिंतासे दुःखी मूढ व्याकुल हुये स्थित रहते हैं. कारण जितेंद्रियादि गुणोंसे लभ्य ज्ञान प्राप्त नहीं होनेसे कभी परमसुखी नहीं होते हैं ॥ ७५ ॥

परमतत्व तो औरही प्रकारका होता है; औरहीसे मनुष्य क्लेश भोगते हैं, शास्त्रका सच्चा भाव औरही प्रकारका है, और उसकी व्याख्याभी औरही प्रकारसे करते हैं ॥७६॥ कोई धूर्त उपदेशादिकोंमें उत्कृष्ट भाव कहते हैं. आप उस उपदेशकी नहीं ग्रहण करते हैं. कोई अहंकारमें आसक्त हुये उपदेशादि करतेही नहीं हैं ॥ ७७ ॥ वेदशास्त्रोंको पढते हैं. परस्पर ज्ञानीके जैसे वार्ता करते हैं, परंतु जैसे करछुली पाकमें रहती है तथापि उसके रसको नहीं जानती है तैसे परमतत्वको जानते नहीं हैं ॥ ७८ ॥ देखिये–पुष्पोंको शिर धारण करता है परंतु सुगंधिको नासिकाही जानती है तैसे वेदशास्त्र पढ़ते हैं परंतु भाव जानना दुर्लभ है ॥ ७९ ॥ हृदयमें स्थित तत्त्वज्ञानको मूर्ख गुरुद्वारसे नहीं

अन्यथापरमंतत्त्वंजनाःक्लिश्यंतिचान्यथा ॥ अन्यथाशास्त्रसद्भावोव्याख्यांकुर्वंतिचान्यथा ॥७६॥ कथयंत्युन्मनीभावंस्वयंनानुभवंति च ॥ अहंकाररताःकेचिदुपदेशादिवर्जिताः ॥ ७७ ॥ पठंतिवेदशास्त्राणिबोधयंतिपरस्परम् ॥ नजानंतिपरंतत्त्वंदर्वीपाकरसंयथा ॥७८॥ शिरोवहतिपुष्पाणिगंधंजानातिनासिका ॥ पठंतिवेदशास्त्राणिदुर्लभोभावबोधकः ॥७९॥ तत्त्वमात्मस्थमज्ञात्वामूढःशास्त्रेषु मुह्यति ॥ गोपःकुक्षिगतेछागेकूपेपश्यतिदुर्मतिः ॥ ८० ॥ संसारमोहनाशायशब्दबोधोनहिक्षमः ॥ ननिवर्ततेतिमिरंकदाचिद्दीपवार्तया ॥ ८१ ॥ प्रज्ञाहीनस्यपठनंयथाऽन्धस्यचदर्पणम् ॥ अतःप्रज्ञावतांशास्त्रंतत्त्वज्ञानस्यलक्षणम् ॥ ८२ ॥

जानकर, शास्त्रोंमें मोहको प्राप्त होता है. जैसे कोई मूर्ख गोप बकरीके बालकको काँखमें दाबकर, कूपमें देखता है ॥ ८० ॥ संसारका मोह निवृत्त करनेके लिये शब्दज्ञान नहीं समर्थ होता है. कारण दीवा देखे बिना दीपककी वार्तासे अंधेरा कभी निवृत्त होता नहीं ॥ ८१ ॥ बुद्धिहीनका पढ़ना कैसा है ? जैसा अंधेको काच दिखाना है; इसीसे बुद्धिवानोंको शास्त्र तत्वज्ञानका लक्षण है ॥ ८२ ॥

'यह तो जाना है, इसको जाननेका है; और सब सुननेको इच्छता है ऐसे पुरुष देवतोंके हजार वर्षकी आयुसेभी शास्त्रोंके अंतको नहीं प्राप्त होते हैं॥ ८३ ॥ शास्त्र अनेक प्रकारके हैं, आयु बहोत कमती है, उसमें करोड़ों विघ्न होते हैं, तिसीसे सार ग्रहण करना. जैसे जलमेंसे हंस दूध ग्रहण करलेता है ॥ ८४ ॥ वेदशास्त्रोंका अभ्यास करके, बुद्धिवान् तत्व जानकर, पीछे धानकी इच्छावाला जैसे तुष त्यागता है तैसे सारग्रहण करके, शास्त्र भारको त्याग देना ॥ ८५ ॥ जैसे अमृतसे तृप्त हुयेको दूसरे आहारका प्रयोजन नहीं तैसे हे गरुड़ ! तत्वज्ञानीको शास्त्रसे प्रयोजन नहीं है ॥ ८६ ॥ हे गरुड़ ! केवल वेद पढ़नेसे मुक्ति नहीं प्राप्त होती है और शास्त्रसे नहीं होती

इदंज्ञातमिदंज्ञेयंसर्वंतुश्रोतुमिच्छति ॥ दिव्यवर्षसहस्रायुःशास्त्रांतंनैवगच्छति ॥ ८३ ॥ अनेकानिचशास्त्राणिस्वल्पायुर्विघ्नकोटयः॥ तस्मात्सारंविजानीयात्क्षीरंहंसइवांभसि ॥ ८४ ॥ अभ्यस्यवेदशास्त्राणितत्त्वंज्ञात्वाऽथबुद्धिमान् ॥ पलालमिवधान्यार्थीसर्वशास्त्राणिसंत्यजेत् ॥ ८५ ॥ यथाऽमृतेनतृप्तस्यनाहारेणप्रयोजनम् ॥ तत्त्वज्ञस्यतथाताक्ष्यंनशास्त्रेणप्रयोजनम् ॥ ८६ ॥ नवेदाध्ययनान्मुक्तिर्नशास्त्रपठनादपि ॥ ज्ञानादेवहिकैवल्यंनान्यथाविनतात्मज ॥ ८७ ॥ नाश्रमःकारणंमुक्तेर्दर्शनानिनकारणम् ॥ तथैवसर्वकर्माणिज्ञानमेवहिकारणम् ॥ ८८ ॥ मुक्तिदागुरुवागेकाविद्याःसर्वाविडंबकाः ॥ काष्ठभारसहस्रेषुह्येकंसंजीवनंपरम् ॥ ८९ ॥ अद्वैतंहिशिवंप्रोक्तंक्रियायासविवर्जितम् ॥ गुरुवक्त्रेणलभ्येत नाधीतागमकोटिभिः ॥ ९० ॥

है. मोक्ष तो ज्ञानसे होता है; ज्ञान विना नहीं ॥ ८७ ॥ मुक्तिका कारण कोई आश्रम नहीं है और मूर्तियोंके दर्शनभी मुक्तिका कारण नहीं है. तैसे सर्व कर्म मुक्तिके कारण नहीं हैं. अर्थात् ज्ञानही कल्याणका मुक्ति कारण है ॥ ८८ ॥ एक गुरुकी वाणी मुक्ति देदेती है, और सर्व विद्या विडंबना हैं; कारण हजारों काष्ठके भारोंमें संजीविनी एकही होती है ॥ ८९ ॥ अद्वैत कल्याणरूप ब्रह्म कहा है. वोह अपनी क्रियाके परिश्रमसे नहीं प्राप्त होता है, किंतु गुरुके मुखसे प्राप्त होता है. आपसे पढे हुए कोटि शास्त्रोंसे नहीं प्राप्त होता है ॥ ९० ॥

आगम अर्थात् शास्त्रके अध्ययनसे प्रगट १, विवेकोत्थ अर्थात् वस्तुज्ञानसे स्वतःही प्रगट हुवा ऐसे दो प्रकारका ज्ञान कहा है. जो शास्त्रसें प्रगट है उसकी शब्दब्रह्म संज्ञा है और जैसे जनकादिकोंको सिद्ध ज्ञान गीताश्रवणमात्रसे हुवा ऐसे ज्ञानसे प्रगट हुवा साक्षात् परब्रह्मसंज्ञक है ॥ ९१ ॥ कोई शंकरस्वामीके मतवाले शैव अपने मतसे (अद्वैत) प्रतिपादन करते हैं. और दूसरे माध्व वैष्णवाभिमानी (द्वैत) प्रतिपादन करतेहैं. परंतु द्वैत और अद्वैत इन मतोंके दुराग्रहसे वर्जित अपने अनुभवसे प्राप्त होनेमें आवै ऐसा " समं तत्वं " अर्थात् सर्वमतानुस्यूत ब्रह्मको नहीं जानते हैं ॥ ९२ ॥ " नमम मम " ये दो पद बंध और मोक्षके वास्ते हैं. " मम " इस पदसे जीव बंधता है. और "न मम" इस पदसे जन्ममरणसे छूटता है ॥९३॥ अर्थात् पुत्र कलत्रादिकोंको अपने माननेसे जन्ममरण पाता है. और पुत्र कलत्रादिकोंको अपना नहीं मान, मिथ्या

आगमोत्थंविवेकोत्थंद्विधाज्ञानंप्रचक्षते ॥ शब्दब्रह्मागममयंपरब्रह्मविवेकजम् ॥ ९१ ॥ अद्वैतंकेचिदिच्छंतिद्वैतमिच्छंतिचापरे ॥ समंतत्त्वंनजानंतिद्वैताद्वैतविवर्जितम् ॥९२॥ द्वेपदेबंधमोक्षायनममेतिममेतिच॥ममेतिबध्यतेजंतुर्नममेतिप्रमुच्यते ॥९३॥ तत्कर्मयन्न बंधायसाविद्यायाविमुक्तिदा ॥ आयासायापरंकर्मविद्यान्याशिल्पनैपुणम् ॥ ९४ ॥ यावत्कर्माणिदीयंतेयावत्संसारवासना ॥ यावदिंद्रियचापल्यंतावत्तत्त्वकथाकुतः ॥९५॥ यावद्देहाभिमानश्चममतायावदेवहि ॥ यावत्प्रयत्नवेगोऽस्तियावत्संकल्पकल्पना ॥ ९६ ॥

संसार माननेमें जन्ममरणसे छूटता है. उसका नाम कर्म है जिस कर्मसे बंधन नहीं होता है; उसका नाम विद्या है; जिस विद्यासे मुक्ति होती है. जो बंधन करनेवाला कर्म है सो तुषोंके कूटनेके जैसे परिश्रम करानेवाला है. और अध्यात्मविद्यासे दूजी विद्या है सो जैसे मकान बनानेकी चतुरता है तैसे है ॥ ९४ ॥ जहांतक फलकी इच्छासे कर्म करता है, तहांतक संसारकी वासना रहती है. जहांतक इंद्रियोंकी चपलता रहती है वहांतक तत्वज्ञानकी वार्ता कहां है? ॥ ९५ ॥ जहांतक देहाभिमान रहता है, जहांतक ममता रहती है, जहांतक उद्योगका वेग रहता है, जहांतक संकल्पकल्पना रहती है ॥ ९६ ॥

जहांतक मनकी स्थिरता करता नहीं है, और जहांतक शास्त्रका चिंतवन नहीं है, जहातक गुरुकी कृपा नहीं होती है तहांतक तत्वज्ञानकी वार्ताभी नहीं है ॥९७॥ तहांतक तप, व्रत, तीर्थ, जप, होम, पूजा आदिक वेदशास्त्रकी कथा है जहांतक तत्वज्ञान नहीं जानताहै ॥ ९८॥ तिसीसे सर्वयत्नसे सब अवस्थामें सदाही हे गरुड़ ! तत्त्वनिष्ठवान् होवे, जो अपने मोक्षकी इच्छा करै॥ ९९ ॥ धर्म और ज्ञान जिसके पुष्प हैं, स्वर्ग और मोक्ष जिसके फल हैं, ऐसे मोक्षतरुकी छायाको तापत्रयसे तपायमान आश्रित होवे॥१००॥

यावन्नोमनसःस्थैर्यंनयावच्छास्त्रचिंतनम् ॥ यावन्नगुरुकारुण्यंतावत्तत्त्वकथाकुतः ॥९७॥ तावत्तपोव्रततीर्थंजपहोमार्चनादिकम् ॥
वेदशास्त्रागमकथायावत्तत्त्वंनविंदति ॥ ९८ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेनसर्वावस्थासुसर्वदा ॥ तत्वनिष्ठोभवेत्तार्क्ष्ययदीच्छेन्मोक्षमात्मनः
॥ ९९ ॥ धर्मज्ञानप्रसूनस्यस्वर्गमोक्षफलस्यच ॥ तापत्रयादिसंतप्तश्छायांमोक्षतरोःश्रयेत् ॥ १०० ॥ तस्माज्ज्ञानेनात्मतत्त्वंविज्ञेयं
श्रीगुरोर्मुखात् ॥ सुखेनमुच्यतेजंतुर्घोरसंसारबंधनात् ॥ १ ॥ तत्वज्ञस्यांतिमंकृत्यंशृणुवक्ष्यामितेऽधुना ॥ येनमोक्षमवाप्नोति
ब्रह्मनिर्वाणसंज्ञकम् ॥२॥ अंतकालेतुपुरुषआगतेगतसाध्वसः ॥ छिंद्यादसंगशस्त्रेणस्पृहांदेहेऽनुयेचतम् ॥ ३॥ गृहात्प्रव्रजितोधीरः
पुण्यतीर्थजलाप्लुतः ॥ शुचौविविक्तआसीनोविधिवत्कल्पितासने ॥ ४ ॥

तिसीसे ज्ञानकरके आत्मतत्वको श्रीगुरुमुखसे जानना. उस तत्वको जाननेसे जीव सुखसे घोर संसारबंधनसे छूटता है ॥१॥ हे गरुड़ ! तत्वज्ञाताका अंतमें कर्तव्य कृत्य कहताहूं सो सुनो. जिससे ब्रह्मनिर्वाणसंज्ञक मोक्षको प्राप्त होताहै ॥ २ ॥ अंतकाल आयाहुवा पुरुष मृत्युभयसे रहित होकर असंगरूपी शस्त्रसे देहकी वांछा काटना और शरीरके संबंधी पुत्रकलत्रादिकोंकीभी वांछा काटना ॥३॥ पीछे घरसे गयाहुवा धीर पवित्र तीर्थोंमें स्नान करके, पवित्र एकांतमें विधिसे कल्पित लिये आसनमें बैठकर ॥४॥

मनसे शुद्धवर्णसे अकार-उकार-मकारात्मक उत्कृष्ट ब्रह्माक्षरका अभ्यास करना. श्वास जीतकर, मनसे ओंकारको नहीं भूलतांहुवा ॥ ५ ॥ मनसे बुद्धिको सारथी करके, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंधादिकोंसे इंद्रियोंको जीतना. कर्मोंसे आक्षिप्त हुए मनको बुद्धिसे भगवद्रूपको धारण करना ॥ ६ ॥ जो 'ब्रह्म मैं हूं वो ब्रह्मही है,' और 'जो ब्रह्म है वो मैंही हूं' ऐसी भावनासे जीवको शोकादिनिवृत्ति और 'मैं ब्रह्म हूं' इस भावनासे ब्रह्मकी पारोक्ष्यनिवृत्ति करके, पीछे निरुपाधि आत्मामें मनको स्थिर करके ॥ ७ ॥ ॐ ऐसे एक ब्रह्माक्षरको उच्चारण करता और हमारा स्मरण हुआ करता शरीरत्याग कर, जो जाताहै वोह परमगतिको प्राप्त होताहै ॥ ८ ॥ जहां ज्ञानवैरा-

अभ्यसेन्मनसाशुद्धंत्रिवृद्ब्रह्माक्षरंपरम् ॥ मनोयच्छेज्जितश्वासोब्रह्मबीजमविस्मरन् ॥ ५ ॥ नियच्छेद्विषयेभ्योऽक्षान्मनसाबुद्धिसार
थिः ॥ मनःकर्मभिराक्षिप्तंशुभार्थेधारयेद्धिया ॥ ६ ॥ अहंब्रह्मपरंधामब्रह्माहंपरमंपदम् ॥ एवंसमीक्ष्यचात्मानमात्मन्याधायनिष्कले ॥
॥ ७ ॥ ओमित्येकाक्षरंब्रह्मव्याहरन्मामनुस्मरन् ॥ यःप्रयातित्यजन्देहंसयातिपरमांगतिम् ॥ ८ ॥ नयत्रदांभिकायांतिज्ञानवैराग्यव
र्जिताः ॥ सुधियस्तांगतिंयांतितानहंकथयामिते ॥ ९ ॥ निर्मानमोहाजितसंगदोषाअध्यात्मनित्याविनिवृत्तकामाः ॥ द्वंद्वैर्विमुक्ताः
सुखदुःखसंज्ञैर्गच्छंत्यमूढाःपदमव्ययंतत् ॥ १० ॥ ज्ञानह्रदेसत्यजलेरागद्वेषमलापहे ॥ यःस्नातिमानसेतीर्थेसवैमोक्षमवाप्नुयात् ॥ ११ ॥

ग्यसे रहित कपटी पुरुष नहीं जाते हैं, उस गतिको सुबुद्धि पुरुष जाते हैं. उन्होंको तुमको मैं कहताहूं ॥ ९ ॥ जिन्होंको मान और मोह नहीं है, जीताहै पुत्रकलत्रादिकोंमें आसक्तिका दोष जिन्होंने, जो अध्यात्मज्ञानमें निष्ठावान् हैं, निवृत्त करी है अभिलाषा जिन्होंने और जो सुखदुःखरूपी द्वंद्वसे छूटे हुयेहैं ऐसे पंडित उस अविनाशी पदको जाते हैं ॥ १० ॥ ज्ञानरूपी सरोवर, सत्यरूपी जल, राग और द्वेषरूपी मैलका नाशक ऐसे मानसतीर्थमें जो स्नान करताहै वोह निश्चय मोक्षको प्राप्त होताहै ॥ ११ ॥

अत्यंत वैराग्यको प्राप्त होकर, जो मनुष्य अनन्यतासे मुझको भजता है, पूर्णदृष्टि है इसीसे प्रसन्न जिसका मन है वह पुरुष मोक्षको प्राप्त होताहै ॥ १२ ॥ घरका त्याग कर, मरनेकी इच्छासे जो तीर्थमें वास करता है और मुक्तिक्षेत्रोंमें मरताहै वह मोक्षको प्राप्त होताहै ॥ १३ ॥ अयोध्या, मथुरा, माया, काशी कांची, अवंतिका, व द्वारका ये सात पुरी मोक्षको प्राप्त करती हैं ॥ १४ ॥ इसप्रकार हे गरुड ! तुमको सनातन मोक्षधर्म हमने कहा है. ज्ञान और वैराग्यसहित इसको सुननेसे मोक्षको प्राप्त होता है ॥ १५ ॥ तत्वज्ञाता मोक्षको प्राप्त होतेहैं, धर्मात्मा स्वर्गको प्राप्त होतेहैं, पापी दुर्गतिको जातेहैं, पशु पक्षी कीटादिक जन्ममरणको वारंवार प्राप्त होतेहैं ॥ १६ ॥ हे गरुड ! ऐसे मैंने

प्रौढवैराग्यमास्थायभजतेमामनन्यभाक् ॥ पूर्णदृष्टिःप्रसन्नात्मासवैमोक्षमवाप्नुयात् ॥ १२ ॥ त्यक्त्वागृहंचयस्तीर्थंनिवसेन्मरणो
त्सुकः ॥ म्रियतेमुक्तिक्षेत्रेषुसवैमोक्षमवाप्नुयात् ॥ १३ ॥ अयोध्यामथुरामायाकाशीकांचीअवंतिका ॥ पुरीद्वारावतीज्ञेयासप्तैतामो
क्षदायिकाः ॥ १४ ॥ इतितेकथितंताक्ष्र्यमोक्षधर्मंसनातनम् ॥ ज्ञानवैराग्यसहितंश्रुत्वामोक्षवाप्नुयात् ॥ १५ ॥ मोक्षंगच्छंतितत्त्वज्ञा
धार्मिकाःस्वर्गतिंनराः ॥ पापिनोदुर्गतिंयांतिसंसरंतिखगादयः ॥ १६ ॥ इत्येवंसर्वशास्त्राणांसारोद्धारोनिरूपितः ॥ मयातेषोडशा
ध्यायैःकिंभूयःश्रोतुमिच्छसि ॥ १७ ॥ सूतउवाच ॥ ॥ एवंश्रुत्वावचोराजन्गरुडोभगवन्मुखात् ॥ कृतांजलिरुवाचेदंतंप्रणम्य
मुहुर्मुहुः ॥ १८ ॥ भगवन्देवदेवेशश्रावयित्वावचोमृतम् ॥ तारितोऽहंत्वयानाथभवसागरतःप्रभो ॥ १९ ॥

षोडश अध्यायोंसे तुमको संपूर्ण शास्त्रोंका सारोद्धार कहा. अब फिर क्या सुननेकी इच्छा करते हो ? ॥ १७ ॥ अब सूतजी कहतेहैं—हे राजन् ! गरुडजी भगवान्के मुखारविंदसे वचन इसप्रकार सुनकर, हाथ जोड़कर, वारंवार नमस्कार करके, ये वचन बोलते भये ॥ १८ ॥ कि—हे भगवन् ! हे देव ! हे देवतावोंके नाथ ! आपने मुझको वचनरूपी अमृत सुनाकर, हे प्रभो ! संसारसमुद्रसे तिरायाहै ॥ १९ ॥

अब मैं गया है संदेह जिसका ऐसा स्थित हूं और कृतार्थ हूं इसमें संशय नहीं है, ऐसे कहकर, गरुड़जी चुप होकर, ध्यानमें तत्पर होते भये ॥ १२० ॥ स्मरण करनेसे जो दुर्गति हरते हैं, पूजन और यज्ञसे जो सद्गतिको देते हैं, जो उत्कृष्ट अपनी मुक्ति देते हैं वोह हमारी रक्षा करें ॥ १२१ ॥ इति श्रीगरुड़पुराणे सारोद्धारे कौशिकगोत्रोत्पन्न पंडितरामचंद्रशर्मविरचितायां ज्ञानबोधिनीभाषाटीकायां मोक्षधर्मनिरूपणो नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ ॥ यह ग्रंथ समाप्त हुवा ॥ ॥ ॥ इसके उपरांत सुननेका

स्थितोऽस्मिगतसंदेहःकृतार्थोऽस्मिंनसंशयः ॥ इत्युक्त्वागरुडस्तूष्णींस्थित्वाध्यानपरोऽभवत् ॥ १२० ॥ स्मरणाद्दुर्गतिहर्तापूजनयज्ञेन सद्गतेर्दाता ॥ यःपरयानिजभक्त्याददातिमुक्तिंसमांहरिःपातु ॥ १२१ ॥ इतिश्रीगरुडपुराणेसारोद्धारेभगवद्गरुडसंवादेमोक्षधर्मनिरूपणोनामषोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ ॥ ॥ समाप्तोऽयं ग्रंथः ॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥ अथाग्रेफलश्रुतिः ॥ श्रीगणेशायनमः ॥ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ॥ इत्याख्यातंमयाताक्ष्यंसर्वमेवौर्ध्वदेहिकम् ॥ दशाहाभ्यंतरेश्रुत्वासर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ १ ॥ इदंचामुष्मिकंकर्मपितृमुक्तिप्रदायकम् ॥ पुत्रवांछितदंचैवपरत्रेहसुखंप्रदम् ॥ २ ॥ इदंकर्मनकुर्वंतिनास्तिकायेनराधमाः ॥ तेषांजलमपेयंस्यात्सुरातुल्यंनसंशयः ॥ ३ ॥

फल है ॥ श्रीभगवान् कहते हैं–हे गरुड़ ! ऐसे सब और्ध्वदेहिक क्रिया मैंने तुमको कही है. इसको दश दिनके भीतर सुननेसे संपूर्ण पापोंसे छूटता है ॥ १ ॥ यह १६ अध्यायोंसे कहा हुआ इस लोकका कर्म पित्रीश्वरोंको मुक्ति देनेवाला है और पुत्रको वांछित देनेवाला है तथा परलोकमें और इसलोकमें सुख देनेवाला है ॥ २ ॥ इस कर्मको जो नास्तिक नीच नहीं करते उन्होंका जल नहीं पीना, क्योंकि वो जल मदिराके तुल्य है, इसमें संदेह नहीं ॥ ३ ॥

देवता और पितर उन्होंके घर नहीं देखते. उन देवता पित्रीश्वरोंके कोपसे उन्होंके पुत्र पोता आदि दुराचारी होते हैं ॥ ४ ॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और भी अन्य मनुष्य ये चांडालतुल्य कहे हैं जो कि प्रेतक्रिया नहीं करते हैं ॥ ५ ॥ जो इस पवित्र प्रेतकल्पको सुनाते हैं और सुनते हैं वे दोनों पापोंसे छूटकर, दुर्गतिको नहीं प्राप्त होते हैं ॥ ६ ॥ मातापिताके मरणमें जो पुत्र गरुडपुराण सुनता है उसके माता पिता मुक्तिको प्राप्त होते हैं और पुत्र संतानवान् होता है ॥ ७ ॥ जिस पुत्रने गरुडपुराण सुना नहीं, गयाश्राद्ध

देवताःपितरश्चैवनैवपश्यंतितद्गृहम् ॥ भवंतितेषांकोपेनपुत्राःपौत्राश्चदुर्गताः ॥ ४ ॥ ब्राह्मणाःक्षत्रियावैश्याःशूद्राश्चैवेतरेऽपिच ॥
तेचांडालसमाज्ञेयाःसर्वेप्रेतक्रियांविना ॥ ५ ॥ प्रेतकल्पमिदंपुण्यंशृणोतिश्रावयेचयः ॥ उभौतौपापनिर्मुक्तौदुर्गतिंनैवगच्छतः ॥ ६ ॥
मातापित्रोश्चमरणेसौपर्णंशृणुतेतुयः ॥ पितरौमुक्तिमापन्नौसुतःसंततिमान्भवेत् ॥ ७ ॥ नश्रुतंगारुडंयेनगयाश्राद्धंचनोकृतम् ॥
वृषोत्सर्गःकृतोनैवनचमासिकवार्षिके ॥ ८ ॥ सकथंकथ्यतेपुत्रःकथंमुच्येदृणत्रयात् ॥ मातरंपितरंचैवकथंतारयितुंक्षमः ॥ ९ ॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेनश्रोतव्यंगारुडंकिल ॥ धर्मार्थकाममोक्षाणांदायकंदुःखनाशनम् ॥ १० ॥ पुराणंगारुडंपुण्यंपवित्रंपापनाशनम् ॥
शृण्वतांकामनापूरंश्रोतव्यंसर्वदैवाहि ॥ ११ ॥

नहीं किया, वृषोत्सर्गभी नहीं किया, मासिक श्राद्ध और वार्षिक श्राद्धभी नहीं किया ॥ ८ ॥ उसको पुत्र कैसे कहना ? वह कैसे तीनों ऋणोंसे छूटता है ? और माता पिताको कैसे तिरानेको समर्थ है ? ॥ ९ ॥ तिसीसे सर्व प्रयत्नसे निश्चय गरुडपुराण सुनना. यह सुनाहुवा गरुडपुराण धर्म, अर्थ, काम, मोक्षका देनेवाला है और दुःखोंका नाश करनेवाला है ॥ १० ॥ गरुडपुराण पवित्र है, पुण्यकारी है, पापोंका नाश करनेवाला है, सुननेवालेकी कामना पूर्ण करनेवाला है, इसलिये सो सदाही सुनना चाहिये ॥ ११ ॥

ब्राह्मण सुननेसे विद्याको प्राप्त होता है, क्षत्रिय सुने तो पृथ्वीको प्राप्त होता है, वैश्य धनवान् होता है, शूद्र पापसे शुद्ध होता है ॥१२॥ इसे सुनकरके वांचनेवालेको लिखेभये सर्व दान देने. पूर्व कैहे हुए शय्यादान आदिको नहीं देवे तौ सफल नहीं होता है ॥१३॥ पहले तौ पुराणकी पूजा करनी, पीछे वांचनेवालेकी वस्त्र, आभूषण, गोदान, दक्षिणा इन्होंकरके, आदरसे पूजा करनी ॥ १४ ॥ और अन्नदान, सुवर्णदान, पृथ्वीदान ये बहुतसे देनेसे वांचनेवालेको भक्तिकरके, बहोत पुण्यके फलकी प्राप्तिके

ब्राह्मणोलभतेविद्यांक्षत्रियःपृथिवींलभेत् ॥ वैश्योधनिकतामेतिशूद्रःशुद्ध्यतिपातकात् ॥ १२ ॥ श्रुत्वादानानिदेयानिवाचकायाखिलानिच ॥ पूर्वोक्तशयनादीनिनान्यथासफलंभवेत् ॥ १३ ॥ पुराणंपूजयेत्पूर्वंवाचकंतदनंतरम् ॥ वस्त्रालंकारगोदानैर्दक्षिणाभिश्चसादरम् ॥ १४ ॥ अन्नैश्चहेमदानैश्चभूमिदानैश्चभूरिभिः ॥ पूजयेद्वाचकंभक्त्याबहुपुण्यफलाप्तये ॥ १५ ॥ वाचकस्यार्चनेनैवमूजितोऽहंनसंशयः ॥ संतुष्टेतुष्टितांयामिवाचकेनात्रसंशयः ॥ १६ ॥ इतिश्रीगरुडपुराणेश्रवणफलम् ॥ ॥ आसीद्वक्तापुराणस्यश्रीशार्दूलमहीपतेः ॥ झुंझुणूनगरस्यापिमिश्रःश्रीसुखलालजी ॥ १ ॥ तस्यश्रीहरिनारायणात्मजस्तत्सुतेनतु ॥ मयानौनिधिरामेणकृतोऽयंसारसंग्रहः ॥ २ ॥ प्राचीनैर्यत्कृतःपूर्वंगारुडःसारसंग्रहः ॥ सतुनोबुद्धिदौर्बल्याज्ज्ञातस्तस्मादयंकृतः ॥ ३ ॥ पुनरुक्तिंपरित्यज्यंक्रमेणायंमयाकृतः ॥ बालानांसुखबोधायनतुपांडित्यगर्वतः ॥ ४ ॥

लिये पूजना ॥ १५ ॥ वांचनेवालेकी पूजा करनेसे मैं भगवान् उस पूजाको प्राप्त होता हूं, इसमें संशय नहीं है. उसके प्रसन्न होनेसे मैं प्रसन्न होता हूं इसमें संदेह नहीं है ॥ १६ ॥ इति श्रीज्ञानबोधिनीभाषाटीकायां श्रवणफलम् ॥ ॥

अत्राप्रमाणंयत्किंचित्प्रमादाल्लिखितंमया ॥ विद्वद्भिःसुविचार्यैवशोधनीयोऽनसूयुभिः ॥ ५ ॥ सारोद्धारोमयामूलैर्बहुग्रंथैर्यथाकृतैः ॥ तथैवानेकटीकाभिरुद्धृतःसारसंग्रहः ॥ ६ ॥ महाखेदान्मयातत्रयथास्थानंनियोजितः ॥ प्राज्ञंविनाप्रयासंमेकोज्ञास्यतिविमूढधीः ॥ ७ ॥ विद्वानेवहिजानातिविद्वज्जनपरिश्रमम् ॥ नहिवंध्याविजानातिगुर्वींप्रसववेदनाम् ॥ ८ ॥ येपूर्वंसंग्रहेमूढानैवजानंतियोग्यताम् ॥ तेकथंहिभविष्यंतिहर्षिताःपठनेऽस्यच ॥ ९ ॥ सारोद्धारमिमंमिश्राःपठंतुनपठंतुवा ॥ मयातुस्वीयबोधायकृतमेतत्रसवेशः ॥ १० ॥ मंगलंभगवान्विष्णुर्मंगलंगरुडध्वजः ॥ मंगलंपुंडरीकाक्षोमंगलायतनोहरिः ॥ ११ ॥ लाभस्तेषांजयस्तेषांकुतस्तेषांपराजयः ॥ येषामिंदीवरश्यामोहृदयस्थोजनार्दनः ॥ १२ ॥ राजानःपरिपालयंतुवसुधांधर्मेस्थिताःसर्वदापृथ्वीकामदुघाभवत्वविरलंवर्षंतुकालेघनाः ॥ ईर्ष्यामुज्झतुदुर्जनःपरगुणेष्वासज्जतांसज्जनःसत्काव्यामृतवर्षिणीकविमुखेवाणीचिरंनंदतु ॥ १३ ॥ इतिश्रीगरुडपुराणेस्वकृतश्लोकाःसमाप्ताः ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

गौडवंशप्रसूतेन रामचंद्राख्यशर्मणा ॥ कृतेयं नूतना टीका भाषायां ज्ञानबोधिनी ॥ १ ॥ गौडवंशावतंसेन श्रीभगीरथसूनुना ॥ हरिप्रसादाभिधेन गुर्जरे-(गुजराती) प्रकटीकृता ॥ २ ॥ ढुण्ढिराजप्रसूतेन विठ्ठलाख्येन शर्मणा ॥ शोधितोऽयं मोहमय्यां पाल्गडग्रामवासिना ॥ ३ ॥ दोहा—सैंतालिसके सालमें, चैत्र मास अरु जान ॥ शुक्लपक्षकी पूर्णिमा, कर्‍यो पूर्ण व्याख्यान ॥ ॥

इदं पुस्तकं मुम्बय्याख्यराजधान्यां 'हरिप्रसाद भगीरथजी' इत्येतेषां प्राचीनपुस्तकाध्यक्षै । 'श्रीव्रजवल्लभ हरिप्रसादजी' इत्येतैः शास्त्रिद्वारा संशोध्य मुम्बईवैभवाख्ये मुद्रणयन्त्रालये मुद्रयित्वा प्रसिद्धिं नीतम् । विक्रमादित्यसंवत् १९७१ शके १८३६.

अथ गरुडपुराणस्याध्यायक्रमेणानुक्रमणिका.

इदं पुस्तकं 'हरिप्रसादभगीरथजी' इत्येतेषां प्राचीनपुस्तकाध्यक्षैः 'श्रीव्रजवल्लभ हरिप्रसादजी' इत्येतैः शास्त्रिद्वारा संशोध्य मुम्बईवैभवाख्ये मुद्रणयन्त्रालये मुद्रयित्वा प्राकाश्यं नीतम् ॥ विक्रमादित्यसंवत् १९७१. यह पुस्तक सन १८६७ के २५ वें ऍक्टके अनुसार रजिस्टर करके सब हक् प्रकाशकने अपने स्वाधीन रक्खे हैं.

॥ इति श्रीगरुडपुराणं भाषाटीकासहितं समाप्तम् ॥